कोरी डिगरियां

[कथा संग्रह]

लेखक
दौलतराम शर्मा

गयाप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा

प्रकाशक	गयाप्रसाद एण्ड संस प्रकाशन विभाग सिटी स्टेशन रोड, आगरा
लेखक	दौलतराम शर्मा
मुद्रक	जगदीश प्रसाद एम० ए० एज्यूकेशनल प्रेस, आगरा
आवरण	रिफारमा स्टुडियो, दिल्ली
संस्करण	१ अक्टूबर, १९६२

प्राक्कथन

प्रस्तुत कहानी संग्रह प० दौलतराम जी की कहानियो का प्रथम सकलन है। इनमे से कतिपय उत्कृष्ट कोटि की पत्रिकाओ मे छप चुकी हैं अथवा आकाशवाणी पर प्रसारित हो चुकी हैं। राष्ट्रीय कार्यों मे सक्रिय भाग लेने के कारण जब कभी समय मिल गया लेखनी उठाकर लिखना प्रारम्भ कर दिया।

पजाव निवासी होकर सिन्ध को अपना कार्यक्षेत्र बनाया और फिर वही के होकर जीवन-यापन करने लगे, छोडा भी तब जब मजबूरी हो गई। भारत विभाजन हो गया और सिन्धवासियो के साथ राजस्थान आ गए और तब से राजस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के सचालक रूप मे कार्य कर रहे हैं।

राष्ट्रीय आन्दोलन मे कई वार जेल यात्राएँ की और फिर निकलकर काम मे जुट गए। थकान या निराश होना आपने कभी सीखा ही नही। जीवन के खट्टे मीठे अनुभव आपके पास हैं, यह कहानियाँ इसी कर्मठ जीवन के अनुभवो का अभिव्यक्तिकरण हैं।

आपके पास वडी-वडी डिगरियाँ नही, नेतागिरी पत्रा के लम्बे चौडे वही खाते नही परन्तु अटूट लगन और हृदय की सवेदना अवश्य है। मन में एक टीस है, मस्तिष्क मे एक प्रौढ राष्ट्रीय एकता की भावना है और जातिवाद का मूलोच्छेदन करने की साकार प्रेरणा है। उनके लिए पशु-पक्षी, स्त्री-पुरुष, भारतीय-अभारतीय सभी एक परमात्मा की अमूल्य देन हैं और वह इसके पक्षपाती हैं कि सभी को मिलजुलकर रहने का अधिकार है।

सम्भव है पंडित जी की कहानियो मे कला की कुछ कमी दिखाई दे परन्तु हृदय की सरल, सुगम और प्रबाध अनुभूति का प्रवाह उनमे अवश्य मिलेगा। जीवन के विभिन्न पहलुओं की अभिव्यक्ति इन कहानियों मे बडे स्वाभाविक रूप मे मिलती है। संतान प्रेम का सहजरूप "निम्मो" मे मिल जाएगा। मानवता मे सहयोग और सहकार की भावना 'बटवारा' मे खूब निखरी है। इसी प्रकार 'वचन के मोल' मे चरित्र की दृढता और भारत की धर्म प्रवण जनता का रूप बडी अच्छी तरह उभर कर ऊपर आया है। जीवन के व्यक्तिगत और सामूहिक चित्र अन्य कहानियो मे प्रस्फुटित हुए हैं।

यत्र तत्र गम्भीरता के साथ हास्य और व्यंग्य भी बडा शिष्ट और स्वस्थ है। हिन्दी मे व्यंग्य और हास्य की कहानियो की वास्तव मे बडी कमी है। छोटी होने पर भी 'पडौसी' और 'स्पेशलिस्ट' इस दिशा मे आशायुक्त प्रयास है। पशु पक्षियो के सम्बन्ध मे प्रेमचन्द जी के बाद कम लिखा गया है। 'निम्मो' तथा 'बटवारा' इस कमी की पूरक हैं।

हमे इस नवागत का स्वागत करते हुए भविष्य मे अधिक आशा करनी चाहिए।

सोमनाथ गुप्त

डाइरैक्टर
साहित्य एकाडेमी,
उदयपुर

अनुक्रम

——

कोरी डिगरि

यह भारत है, यह भारत है, कहते कहते मेरी आँखें सजल हो आई—और उनसे टप-टप आँसू गिरने लगे।

प्रात काल का समय था। रेल अपनी रफतार के साथ दौडी जा रही थी। पजाब की ठडी हवा और वर्षा से मेरा शरीर सिकुड गया था, जो अब राजस्थान की शुष्क हवा और रजाई की गर्मी से फिर चेतना प्राप्त कर रहा था। मन करता था यूँ ही रेल चलती रहे, और मैं उस सुन्दर दृश्य का स्मरण बार बार करता रहूँ। यो तो जीवन म अनेक घटनाय मैंने देखी हैं, जिन्होने मुझ पर गहरा प्रभाव डाला है परन्तु ऐसी घटना मैंने पहले कभी न देखी थी। यही कारण था, कि अवाक् ही मेरे मुँह से निकल गया, यह भारत है, यह भारत है।

उस दूसरे दर्जे के डिब्बे मे केवल दो सीट थी। सभवत वह डिब्बा पहले दर्जे के डिब्बे से बदल कर दूसरे दर्जे का बनाया गया था। नही तो साधारणत जो डिब्बा दूसरे दर्जे वालो को

दिया जाता है, वह तीसरे दर्जे के डिब्बे से भी गया बीता होता है। हाँ तो मेरे "यह भारत है, यह भारत है," कहते ही सामने वाली सीट पर लेटा हुआ यात्री, "इसमे क्या शक है, इसमे क्या शक है," कहता हुआ उठ बैठा, और मेरी ओर ध्यानपूर्वक देखने लगा।

कुछ समय तक हम दोनो मौन रहे, मैं सोच रहा था, कि इन्हे वह घटना कहूँ भी या नही। मैं एक अपरिचित से यूँ एका-एक खुल जाना पसद नही करता था।

"यह भारत है, यह भारत है, कहते-कहते आप रुक क्यो गये ?" मेरा सह यात्री बडी ही नम्रता से बोला।

"यूँ ही, परन्तु हाँ मैं एक ऐसी घटना देख कर आया हूँ, जिसकी स्मृति मात्र से मेरे मुख से निकल पडा। यह भारत है, यह भारत है।' कहते-कहते मैं भी उठ बैठा।

"अगर आप को कोई आपत्ति न हो, तो वह घटना मुझे भी कहे, जिसने आप को इतना प्रभावित किया है।" सह-यात्री जिज्ञासु रूप मे बोले।

"क्यो नही ! भारत माता तो सबकी माता है और उसमे रहने वाले सभी भाई भाई है। उन सब के दुःख सुख भी समान हैं। तब वह घटना जो मेरे मन को पुलकित कर रही है, आपको कहने मे क्या हानि है'—मैंने प्रेमपूर्वक कहा।

तो फिर कहिये।

"हाँ तो, मेरे हैं, एक बाल मित्र, नाम है उनका नीलकण्ठ। काफी डिगरियां पाये हुये हैं। बी० ए०, एम० ए०, लॉ पता नहीं, और भी उन्होंने कौन-कौन सी डिगरियां ले रखी हैं। मुझे तो वे सदा बुद्धू कहते हैं। क्योंकि मैंने उन जैसी डिगरियां प्राप्त नहीं की पर सच्ची बात यह है, कि यह सब डिगरियां प्राप्त करने के बाद भी, एक डिगरी लेना उन से छूट गई है, वह है "जीवन कला"।

कुछ समय पहले उनकी पत्नी श्रीमती गिरिजा ने मुझे तार दे कर बुलाया। इस से पूर्व भी, वह कई बार इसी प्रकार बुला चुकी थी। परन्तु अब मैं उन घटनाओं को भूल सा गया था। तार पाते ही वह सब घटनायें याद हो आई, मुझे लगा, अवश्य ही फिर कोई खट-पट हुई है। सच बात तो यह है, कि उनका श्रीगणेश ही ठीक ढंग से न हो पाया था। तब मुझे विवाह से पूर्व लिखा गया बाबू नीलकण्ठ का पत्र याद हो आया जो शेखी से लिखा गया था। उन्होंने लिखा था—

'तुम अच्छी प्रकार से जानते हो कि अभी मुझे बहुत सारी डिगरियां प्राप्त करनी हैं जिनके लिए काफी धन की आवश्यकता है, जो दुर्भाग्य से मेरे पास नहीं है। इसलिए धन प्राप्ती का सुगम मार्ग मैंने ढूढ निकाला है और वह है विवाह करना। भाग्य से ऐसा एक घर भी मिल गया है जिसके धन से मैं शिक्षा जारी रख सकता हूँ। हाँ इतना और भी कह सकता हूँ,

कि मेरी भावी पत्नी भी बडी ही सुन्दर और सुशील है। आशा है तुम अपनी मगल कामनायें भेजना न भूलोगे।'

तुम्हारा
नीलकंठ

मेरे घर पर पहुँचते ही श्रीमती नीलकंठ ने कहना शुरु किया।

'आप मुझे ही बार-बार समझाते हैं। उन्हें तो एक शब्द भी नही कहते। उनके सामने तो आप भी भीगी बिल्ली बन जाते हैं। मैंने उनके सग इतने वर्ष बिता दिये, आप एक सप्ताह ता रह देख ? मुझे उनका राज-पाट नही चाहिये। राज पाट की कौन कहे, भगवान उनके दर्शन भी न कराये। कौन सा कष्ट है, जो मुझे उन्होने नही दिया। मेरी तो छोडो, उन्हें अपने बच्चो पर भी दया नही आई। श्रीमति गिरिजा जी ने बडे दु ख से कहा।

मुझे जैसे काठ मार गया हो, मैं चुपचाप सुनता जा रहा था।

थोडा रुककर वे फिर बोली।

'आधी रात का समय था। कडाके की सर्दी पड रही थी। पूरे कपडे न होने के कारण बच्चे थर थर काप रहे थे। मगर वह हमें एक दूसरी गाडी पर बैठा कर स्वय किसी और गाडी मे

बैठ गये। आप अनुमान नही लगा सकते, कि उन्हे साथ न पाकर हमारी क्या गति बनी होगी। अन्त मे हम कहाँ कहाँ भटक कर घर पहुचे, यह एक अलग बडी दास्तान है।

आज पूरे छ महीने हो गये है, परन्तु उन का कोई समाचार नही। जाते समय वह घर म एक पैसा भी नही छोड गये थे, जिससे मै बच्चा की सँभाल करती। किस प्रकार यह छ माह मैंने महनत मजदूरी कर बच्चो की पालना की है, यह मेरा मन ही जानता है। आप सुन, ता दु ख से पागल हा जायें। सच है, 'जिस तन लागे, वे तन जाने, और न जान पीड पराई।' यह कहते कहते गिरिजा जी फट-फ्ट कर रोन लगी।

मगर मेरे पास कोई शब्द न था, जिससे उनक दु खी मन को धीरज बँधाता। इसलिये मेने साचा, कि दु ख रूपी बादलो के खुल कर बरस जाने मे ही कल्याण है। उनके रोकने म नही।

पूरे आध घन्टे तक जब वे दिल खोलकर रो चुकी, तब वे फिर एक से एक बढ कर दर्द भरी कहानी कहने लगी।

'सर्दियो के दिन थे। हमारे पडोस म एक कन्या की शादी थी। स्त्रियो के बहुत कहने सुनने पर मैं भी दोनो बच्चो के साथ वहाँ चली गई, रात के दस भी न बजे होंगे, कि मैं लौट आई। अभी घर मे पैर ही रखा था, कि वे एक खूँखार शेर की तरह मुझ पर झपटे। पहले तो बडी बुरी तरह से पीटा, और अन्त मे

घर से निकाल वाहर किया। बच्चे मारे भय के चीख रहे थे। मार पीट तो रोज की बात थी, परन्तु वह बिना किसी दोष के घर से वाहर और वे भी रात्रि के समय निकाल सकते है, ऐसा मैंने पहले कभी न सोचा था। सारी रात मैं बच्चो को गोदी मे लेकर बाहर बैठी रही मगर उन्होने हमारे लाख पुकारने, चीखने पर भी दरवाजा न खोला, और न खोला।'

मैंने चाहा, वह थोडा जल पी कर सुस्ता ले, और फिर जो कहना हो कहे परन्तु उन्होने न तो जल पिया, और न ही मेरी प्रार्थना पर ध्यान दिया। मानो वे खून के आसूँ पी रही हो, सुस्ताना तो उनके भाग्य मे ही नहीं था।

'एक रात मैं दोनो बच्चो को साथ लेकर नदी की ओर चल पडी। सोचा था, पहले दोनो बच्चो को नदी मे फेंक दूँगी, बाद मे स्वय कूद पडूगी। मगर बच्चो का चाँद जैसा मुखडा मुझे आशा और धीरज बँधाता। मन चाहता, मैं उलटे पाव लौट जाऊँ। मगर जब फिर यह नर्क भरा जीवन याद आता, तो पैर आगे ही आगे बढते जाते। गणेश उन दिनो दस वर्ष का था। वह मेरे आगे-आगे चल रहा था। मुन्नी मेरी गोदी मे थी। उन निर्दोष बच्चो को यह ज्ञान भी न था, कि स्वय उनकी जननी उन्हें मौत के घाट उतारने जा रही है। गणेश चलते-चलते पूछता, माँ हम कहाँ जा रहे है? अभी हमें और कितना चलना है? परन्तु मैं क्या उत्तर देती मेरा आँचल आँसुओ से भीग गया

था, और मैं चुप-चाप चल रही थी। इतने मे हम नदी पर आ गये। क्या देखती हूँ, कि एक सुन्दर बालक नदी पर बैठा बासुरी बजा रहा है। मै डर गई, वह स्थान छोड कर थोडी आगे बढी। मेरा खून खौल रहा था, मैं मोह माया का त्याग कर चुकी थी। परन्तु क्या देखती हूँ, कि वह सुन्दर बालक वहाँ भी खडा है। उसकी मनमोहनी सूरत, बासुरी का मधुर अलाप, मानो मुझे कह रहे हो, लौट जाओ, बहिन लौट जाओ। आत्म-हत्या महा-पाप है। यह सुनते ही मैं स्वस्थ हो गई। मैंने दौडकर गणेश को चूमा। मुन्नी को थपथपाया। परन्तु वह मेरे कधे पर सिर रखे गहरी नीद मे सो रही थी। हम घर को चल दिये, मैने मुड कर देखा—सुन्दर बालक अलोप हो चुका था।

बडी दर्द भरी कहानी है। ऐसी ही अबलाओ के लिये राज्य ने तलाक बिल बनाया है। अन्यथा भारत की परम्पराओ को देखते हुये ऐसे बिल की आवश्यकता न थी।' सहयोगी बडे दु:खी मन से बोले।

'परन्तु अभी आप ने सुना ही क्या है सारी बात सुन जायें, तो दु:ख से रो पडे'—मैने उत्तर दिया।

'मगर इस जुलमो सितम का कोई कारण भी तो होना चाहिये।' सहयोगी ने फिर प्रश्न किया।

'कुछ नही, अपनी असफलताओ की टीस जो अपनी पत्नी पर

निकालते। थोथी डिगरियों का अभिमान जिससे उन्हे सारी दुनिया मूर्खों और 'ताडन के अधिकारी' दीखती। वह दो चार माह से अधिक कही नौकरी भी न कर पाते। उन्हे लगता कि सारी दुनिया उनके विरुद्ध षड्यन्त्र कर रही है। उन जैसे योग्य व्यक्ति को लोग टिकने नही देते। इस वहम में वे बडों वडो का अनादर कर देते जिससे अन्त मे उन्हें नौकरी से हाथ धोना पडता।'

'अजीब खोपडी है, आपने उनकी पत्नी को कानून की सहायता लेने को क्यो नही कहा।' साथी जोश से बोले।

'कहा क्या नही? उनके हितचिन्तको ने उनसे अनेक बार कहा। मगर उन्होंने किसी की न मानी। उल्टा वे नाराज हो जाती। तब हितचिन्तका को क्षमा मागनी पडती।'

'यह भी खूब रही। नारी स्वभाव भी वडा विचित्र है।' सहयागी आश्चर्य से बोले।

'फिर क्या हुआ?' सहयागी थोडा रुक कर बोले।

''हां, तो जब वे सब दर्द भरी घटनाएँ कह चुकी, तो मैंने कहा, मुझे तार देकर आपने क्यों बुलाया है। मेरे योग्य सेवा कहिये? तब उस वीर नारी ने जो उत्तर दिया, उसे सुन कर मैं अवाक् रह गया।

'मुझे न तो पीहर जाना है, नही सुसराल वालो का आधार लेना है। मैं महनत करूंगी, चक्की पीसूंगी, मगर किसी के आगे

हाथ नही फैलाऊँगी। आपको बुलाने का केवल यह भाव है कि अगर उनका कही पता लग जाये तो मुझे सूचना दें।'

दिनो के बाद महीनो, और महीनो के बाद वर्ष बीत गये, पर बाबू नीलकण्ठ का कही पता न लगा, न उन्होंने ही कोई समाचार दिया लिया। इधर गणेश भी युवक हो चुका था, और एक अच्छे कारोबार मे लग गया था। वह हर प्रकार का प्रयत्न करता, जिससे उसकी जननी प्रसन्न रहे। परन्तु उनके चहरे पर न तो कभी किसी ने खुशी पाई, और न तन पर अच्छा कपडा, वे एक तपस्विनी की भाँति आयु बिताने लगी।

अचानक मुझे गणेश का एक पत्र मिला जिसमे लिखा था।

'पिताजी घर लौट आये है। वे आप से मिलना चाहते है। बन पडे तो शीघ्र यहाँ आकर उनसे मिले।'

इस सक्षिप्त पत्र को पाकर मेरे हर्ष का पारावार न रहा। जिस व्यक्ति के तलाश करने के लिये वर्षो से दौड धूप की जा रही थी, और कही पता नही लग रहा था वह एका एक कैसे घर लौट आया। जो हो, मै शीघ्रता मे स्टेशन की ओर लपका और मुझे जो पहली गाडी मिली, उसी पर सवार हो कर उनके गाँव जा पहुँचा। परन्तु मेरा मन धडक रहा था। मैंने सोचा, बाबू नीलकण्ठ अब काफी बदल गये होंगे। हो सकता है, न भी बदले हो, और हम मोह माया मे पडे लोगो को सत्य उपदेश देने आये हो। मन की उडान से उडता, इधर-उधर की सोच-

विचार करते जैसे ही मने उनके आँगन मे पैर रखा तो क्या देखता हूँ, उनके आँगन मे कुछ कागजो की होली हो रही है। गरोश और मुन्नी जार जोर से हँस रहे है। 'माँ हमने पिताजी के पर काट दिये, अब वे हमे छोड कर कही नही जायेंगे। न ही तुम पर अत्याचार करगे।'

'देखो गरोश, तुमन वडा अन्याय किया है। तुम मेरे जीते जो उनका अनादर नही कर सकते। हँसी वन्द करो और उन स क्षमा मागो। वेटा पहले मुझे जान से मार दो, वाद मे उन से प्रश्न उत्तर करो।

उधर वावू नीलकण्ठ की आँख खुल चुकी थी। वे रुँधे हुए कण्ठ से बोले 'गिरिजा, तुम नारी नही देवी हो। मुझे क्षमा करो। गरोश ने इन डिगरियो को जला कर अच्छा ही किया है। इन डिगरियो के अभिमान ने मुझे कही का न रखा था। न मैं घर म सफल हो पाया था, न वाहर। और तो और मानवता भी मुझे छोड गई थी। मैं विना छोटे बडे का लिहाज किये सवका अनादर कर देता था। काश मेने कही जमकर नौकरी की होता तो आज किसी उँचे पद पर पहुँचा होता।

मेरे इस झूठे अभिमान के कारण, तुम्ह और वच्चो को कितना कष्ट, कितना वियोग सहना पडा। अफसोस आज मुझे ज्ञान हुआ है कि कोरी डिगरिया ही सव कुछ नही। जीवन को सफल वनाने के लिये और भी अनेक वातो की जरूरत है।' यह

कहते कहते बाबू नीलकण्ठ गिरिजा की ओर बढ़े, मानो उनके पैर छूने जा रहे हों।

परन्तु देवी गिरिजा ने उन्हें यह मौका न दिया और स्वयं आगे बढ़ कर उनके चरण छू लिये। राम जाने, किस भूल का कारण इतने वर्षों का वियोग बना। 'अब मेरे चरण छू कर और दोष क्यों चढ़ाते हो।' देवी गिरजा गद्गद् हृदय से बोली।

इस सुन्दर मिलन को देख कर मेरी आँखों से आनन्द अश्रु गिरने लगे। मैंने आगे बढ़ कर उस वीर रमणी को प्रणाम किया।''

सह यात्री भी कहने लगे—'श्रीमान जी, यही तो भारत है।'

निम्मो

"निम्मो ! निम्मो !! निम्मो !!!

"बेटी ! तू कहाँ है ? मैं कब से तेरी खोज कर रही हूँ ? पर तू है कि मिलती ही नही। राम उन दुष्टों को सुमति दे, जिन्होंने मेरी प्यारी बेटी को मुझसे जुदा किया।"

हाँफ्ती हुई बलवती, व्यथा-कातर होकर पुकार रही थी।

जिस प्रकार श्री राम पचवटी से सीता के हरे जाने के बाद विरह मे वन के पेड पौधो और पक्षियो से पूछते फिरते थे कि मेरी सीता कहाँ है ? मेरी प्राण-प्यारी कहाँ है ? उसी प्रकार ममता की मारी वात्सल्य-मयी बलवती जगल मे मारी मारी फिर रही थी। उसे न तन की सुध थी और न भूख प्यास की चिंता। झाडियो मे उलझ उलझ कर उसके सारे कपड़े फट गये और काटो से दोनो पैर छलनी हो गए, फिर भी वह पुकारती जाती थी—"निम्मो ! निम्मो !! निम्मो !!! प्यारी बेटी ! तू कहाँ है ?" पुकारते पुकारते उसका गला बैठ गया। होठो पर पपडी जम गई पर उसका मातृत्व तडफता रहा, अपनी कलेजे की कोर को देखने के लिए।

बलवती की शादी हुए पूरे दस साल हो गए। उसकी आयु पच्चीस वर्ष की हो चली है। लेकिन वह अभी उस मीठे फल से

वंचित है, जिसे पाकर नारी जीवन धन्य हो उठता है। उसका पति स्वस्थ और सुन्दर है। सौ मे एक है। वह स्वयं भी अनिंद्य सौन्दर्य की स्वामिनी है। पुरुष तो पुरुष, नारियाँ भी उसका निर्दोष रूप निरख कर रीझ जाती है। स्वभाव की इतनी सरल और सीधी कि कोई भी अपनी बात मनवा ले और वाणी की इतनी मीठी कि जैसे मिश्री घुली हो। पर उसके मन की छटपटाहट की कौन जाने? रह रह कर उसे अपनी सूनी कोख का ध्यान हो आता है। वह सोचती है कि उसकी गोद कब भरेगी? कब एक रुनझुन करता प्रसवकमाला और नदलाला सा बालक उसके आगन को अपनी आह्लादकारी किलकारियो से भरेगा?

एक दिन जब बलवती खेत से चारा लिए लौट रही थी तो उसन हिरणो के एक झुड को देखा। झुड मे एक हिरणी अपने बच्चे को दूध पिला रही थी। वह ध्यान मग्न होकर उस सुन्दर मृग शिशु को देखने लगी। उसके बडे बडे मुदकारी नयन बडे भले लगे। आज उसे पता चला कि ससार सुन्दर नारियो के बडे बडे नैन निहार कर क्यो उन्हे मृग नयनी कहता है? चपलता से छौने का दूध पीना उसे इतना सुहावना लगा कि उसकी छातिया भी पवस गई। उसे लगा कि उसके स्तन दूध से भर गए हैं और कोई चचल बालक उन्हे चपड चपड करके पी रहा है। उसका मातृ हृदय वात्सल्य से भर गया।

इस काल्पनिक सुख को अनुभव करती हुई वह ध्यानावस्थित होगई और जैसे ही उसकी तद्रा टूटी उसे कुत्तो का शोर सुनाई पडा। उसने देखा कि शिकारी कुत्तो का एक दल विकराल काल की तरह हिरणो की ओर झपटा आ रहा है। उसे देखकर हिरण भागे, पर छौने की मा कैसे भाग सकती थी ? काल इतना निकट था कि क्षण भर की देरी भी उन दो निर्दोष जीवो की हत्या का कारण हो सकती थी। वलवती चारे का गट्ठर एक ओर फेककर तीर की तरह झपटी और उस छौने को उठा लिया। छौने को सुरक्षित जान उसकी मा मृगी भी जान बचा-कर भागी। पर जाते समय उसने इस कमलनयनी को देखा — मानो कह रही हो, बहिन, अब तू ही इसकी मा है। मरते दम तक इसकी रक्षा करना। क्षण भर मे हिरणो का दल दृष्टि-पथ से ओझल हो गया।

छौने को गोद मे लेते ही वलवती को रोमाच हो आया। कपडे की थोडी सी ओट कर उसने चोली खोलदी और एक पुत्रवती नववधू की तरह उसे दूध पिलाने लगी। उसके स्तनो से गगा-जमुना की पवित्र धाराएँ वह निकली। उसे लगा कि आज उसका नारी जीवन सफल होगया। उसने स्नेह से अनेक वार उस चचल छौने को चूमा। तब कही जाकर उसके मन की प्यास मिटी। उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। वह अनोखा उपहार पाकर निहाल होगई। उसके पग घर की ओर वढ चले।

अब बलवती का एकाकी जीवन समाप्त हो गया। उसके घर का आगन और मन दोनो भर गये। जहाँ पहले उसके घर मे कटखनी शून्यता छाई रहती थी अब वहाँ सारे दिन बच्चो की टोलियाँ जुडने लगी। उसके घर आने वाले बाल समुदाय ने छौने का नाम रखा निम्मो!

निम्मो ने प्रकृति प्रदत्त अपनी प्रियदर्शी सुषमा और चाचल्य से सबको मोह लिया। बलवती तो खैर उसे प्यार करने वालो मे सबसे आगे थी ही, पर गली भर के नर नारी भी उसे चाहने लगे। बाल क्रीडाओ के बीच वह धीरे धीरे बढने लगी। उसकी उछल कूद और विशेषत बडी बडी आँखें और गले मे रुन झुन करती हुई दो घटिया तो राहजातो को मस्त कर देतीं।

बलवती इस वरदान को सहेज कर रखती। उसे हरदम यह ख्याल तग करता रहता कि उसकी निम्मो भूखी न रह जाय। कोई पास पडोस का छोकरा उसके कही कुछ कर न दे। उसके पास खडी रहकर भर पेट खिलाती। उसके मृदुल अवयवो पर हाथ फेरकर वह स्वर्गीय सुखानुभूति पाती। सारा दिन निम्मो! निम्मो!! करते बीतता।

बलवती का समस्त मातृत्व निम्मो पर उमड पडा। और निम्मो भी उसके भाव समझती। यदा कदा बलवती का अपने पति से झगडा हो जाने पर वह उदास हो जाती और निम्मो को खिलाने बैठती तो निम्मो, अपने होठा को फड फडाकर उसके

होठो से छुआ देती, मानो यह पूछती हो कि आज मैय्या ! उदास क्यो हो ?

इस पर बलवती की उदासी न भागती तो निम्मो अपनी क्रिया को अनेको रूपो म दुहराती जाती खाना न खाती। अत मे बलवती को अपनी निम्मो का इतना प्यार देखकर, अपने प्रति इतनी सहानुभूति का अनुभव कर और उसका खाना न खाने के लिए रूठना पिघला देता। वह उसे उठाकर छाती से लगा लेती और मुस्कराकर जोर से कहती।

"अरी मरी ! ले खाले। नाराज क्यो होगई ?" और निम्मो पुलकित नयनो से अपनी मा को देखती देखती सारा चारा पानी चटकर जाती।

निम्मो और बलवती
पशु और मानव
मा-बेटी,
दु ख सुख की सगिनी
मनुष्यत्व की भावना का चरमोत्कर्ष !

निम्मो छोटी कब तक रहती ? वह मा की छत्र-छाया मे बडी होने लगी। पशु सुलभ उसके उत्पात भी बढने लगे।

बलवती अपनी पडौसिनो से शिकायत सुनती-सुनती हैरान। कोई कहती—आखिर यह भी कोई बात है ? बेटी होगी तो

तेरी। नाशगई, हमारा आटा क्यो खा जाती है ?

कोई कहती—"मरी ले जाये तेरी इस निम्मो को। आज यह दूध उलट आई।"

आखिर मे इन उपालंभो की शृखला इतनी बढ गई कि जब एक वर्ष बाद उसका पति छुट्टी पर घर आया तो लोगों ने उसकी खूब खबर ली। इससे उसे गुस्सा आगया। पति-पत्नी दोनो मे निम्मो को लेकर झगडा होगया। वह कहता कि इसे निकाल कर घर से बाहर करो। क्या बबाल पाल रखा है। जिसे देखो वही इसकी शिकायत लिए आता है। बलवती कोई जवाब न देकर रो देती।

वह घर वाले की यह बात कैसे माने ? भला अपनी लडकी को भी घर से निकाला जा सकता है। ना. ना ऐसा न तो करूँगी और न होने दूँगी। ये अडोस-पडोस के लोग तो निर्दयी हैं। इन्हे क्या मालूम मैंने निम्मो को कैसे पाला है ? कितना इसे अपनी छाती का दूध पिलाया है। इसने तो मेरा सारा दु ख ही हर लिया।

कई बार कहने पर भी न मानी तो एक दिन बलवती के पति ने निम्मो को कही जंगल मे छोड आने की योजना बनाई। वह उसके पैरो पडकर रोई और खूब रोई। बोली—

"निम्मो बेटी है। यह पाप न करो। इसे मैंने अपना दूध पिलाकर पोषा है।"

इसका कुछ ऐसा असर पडा कि निम्मो घर से निकाली न जा सकी।

छुट्टी समाप्त हो जाने से बलवती का पति नौकरी पर चला गया।

मा बेटी की बनी रही।

निम्मो दो साल की होगई। उसके घूमने फिरने की सीमा गाव के खेतो तक बढ गई। वह स्वय ही खेतो मे जाकर चर आती। गाव के कुत्ते उसे कुछ न कहते। उनका मुकाबला करना वह बालपन से ही सीखी हुई थी।

निम्मो के विरुद्ध शिकायतो का अत न हुआ। खेतो से शिकायते आने लगी कि यह धान चर आई। पौधो को कुचल आई। इसे कसाइयो के हवाले करो। कही-कही से यह भी सुनाई पडने लगा कि इस बार इसने खेत पर पग रखा नही कि काट कर रख दूंगा।

बलवती यह सुनकर बेहाल! वह अब हरदम शकित रहने लगी। कौन जाने, कब क्या हो जाये? अत मे निम्मो को कोई मार डालेगा इस भय से उसने स्वय ही उसे जगल मे छोड आने की सोची। लोगो को शात करने के लिए दो चार बार वह उसे जगल मे छोड भी आई। पर वह क्या करे? उसके घर पहुँचने से पहले ही निम्मो उसे आगे खडी मिलती। या न मिलती तो

वह स्वय जाकर ढूंढ लाती। मन भी तो कहे का नही रहा। इस ज़रा सी जुदाई से ही उसका मन निम्मो के लिए तडफने लगता। वह उसे गले से लगाती, गोया वर्षों बाद बेटी अपनी ससुराल से आई हो।

तब तग आकर एक दिन किसानो ने निम्मो को घेर लिया और खूब बेदर्दी से पीटा।

निम्मो मार खाकर अधमरी हालत मे घर लौटी तो उसे देखकर बलवती चीखे मारकर रोई और उससे चिपट गई। मन कुछ शात हुआ तो निम्मो के घायल अगो को साफ करते हुए उसने कहा—

"निम्मो री! तू उन कसाइयो के बीच क्यो गई? पर तुझे क्या पता कि यहाँ आदमी कोई नही बसता। उसे निम्मो की मा की वे आँखे याद आई जब उसने जगल मे छोडकर भागते समय देखी थी। जो उससे पूछ रही थी—क्या इसी बूते पर तूने निम्मो को गोद लिया था? धिक्कार है ऐसी मानवता को!

बलवती तिलमिला उठी और आहत निम्मो को गोद मे लेकर जगल की ओर चल पडी। लगभग पाच मील जाकर एक पेड के नीचे रुकी।

निम्मो मार खाने और चलने के कारण बुरी तरह थक गई थी, इसलिए वह बेहोश होकर गिर पडी।

वलवती कलेजे पर पत्थर रखकर जगत-रक्षक के भरोसे निम्मो को छोडकर लौट आई। सारी रात रोती रही। एक छन को भी उसकी आँख न भपी। बार-बार उसे निम्मो का ध्यान हो आता।

उसकी बेटी निम्मो '

हा, निम्मो मर रही है।

प्रात होते ही वलवती उठी और निम्मो से मिलने चली। उसने सोचा अब वह स्वस्थ हो चुकी होगी। अत उसे लेकर आगे चल पडूंगी। इस गाव का कभी मुँह भी न देखूँगी।

जब वह कल वाले पेड के पास पहुँची तो उसे निम्मो दिखाई न दी। उसके मस्तिष्क का सतुलन जाता रहा। उसे आखो मे अँधेरा आता हुआ लगा।

पागल वलवती वियोगिनी की भाति इधर उधर चक्कर लगाने लगी। मातृ हृदय की इस असह्य पीडा ने समस्त वायु-मडल को आकुल बना डाला।

व्याकुलमना वह पगली घूमती घामती नहर के किनारे पहुँची। नहर मे उसे कुछ तैरता हुआ दिखाई दिया। वह निम्मो की लाश थी।

निम्मो रात भर वलवती को खोजती-खोजती नहर मे फिसल गई, बाहर न निकल सकी।

वलवती ने अपनी थोडी सी चेतना शक्ति के सहारे लाश को पहचान लिया। वह निम्मो ' निम्मो !! पुकारती हुई उस पर कूद पडी।

जीवन-दान

तार पढते ही वृद्ध चिल्ला उठा—

"उफ ! यह कैसा अंधेरा ! मेरी जमीन गई, जायदाद गई और गया वतन, पर मैंने पीछे मुड़कर भी न देखा। मन मे एक संतोष था कि चलो धर्म तो बचा। भारत मा की बेडिया तो कटी। मगर अब यह अन्याय तो मुझसे सहा नही जायेगा।"

वृद्ध केवलराम का कलेजा तिलमिला उठा। उसकी आँखो मे पुत्री की भोली सूरत घूम गई, एक के बाद एक विचार उठ कर उसे विदग्ध करने लगे—

"मैंने कमला की एक न मानी। वह कितनी रोई थी ? लेकिन मैंने कुल और धन के अभिमान मे उसकी एक भी न सुनी। वह मन मसोस कर रह गई। मैंने उसके मन के विरुद्ध एक साहूकार के लडके के साथ बीस हजार दहेज का वचन देकर उसकी मगनी करदी। पर हाय ! क्या पता था कि ऐसे दिन भी हम अभागो को देखने होंगे। बीस हजार तो क्या बीस रुपये भी हमारे लिए जुटाने कठिन हो जायेंगे ? और ये धनवान लोग पूर्वजो की मान मर्यादा त्याग कर केवल धन के तराजू से ही मानवता तोलेंगे। धिक्कार ! सौ सौ बार धिक्कार ! पर आज दूसरो को धिक्कार देने से बनेगा भी क्या ? स्वय मुझी को

धिक्कार है, जिसने रमेश जैसे होनहार युवक को केवल इसलिए स्वीकार नही किया कि वह एक गरीब विधवा का लडका है। अब याद आता है वह दिन जब वे दोनो—कमला और रमेश कालेज से एक साथ आते थे—तो देखने वाला के मुँह से हठात यह बात निकल जाती कि कितना सुंदर जोडा है !"

पर अब चारा ही क्या था ? केवलराम अपना सिर थाम कर रह गया।

× × ×

नियति जहा अत्यत दयालु है, वहाँ वह क्रूर भी कम नही। जिस चमन मे कल बुल-बुलें चह चहाती थीं, वही आज विया वान हो रहा है। जिस नगर की हर शाम दीपावली होती थी, वहाँ आज चारो तरफ अधेरा ही अधेरा छाया हुआ है। जहाँ हिन्दु मुसलमान मिलकर खुशिया मनाते थे, वहाँ जगखोरो ने कुछ ऐसी शरारत की कि भाई भाई का प्राण लेवा हो गया। परिणामस्वरूप देश के दो टुकडे हो गए। हिन्दुस्तान, पाकिस्तान। हिन्दू धडा धड सिन्ध छोडने लगे। लाड के प्रसिद्ध जमीदार भाई केवलराम न जब यह दुर्दशा देखी तो वह भी अपनी पत्नी और पुत्री के साथ अजमेर आ बसा।

यू तो पाकिस्तान बनने की दुर्घटना से सभी को तरह तरह के कष्ट और अपमान सहने पडे है, परन्तु जमीदारो की आप बीती अकथनीय है। व्यापारी और पढे लिखे तो इधर उधर

भटक कर कही न कही काम पर लग गए, मगर जमीदार लोग न नौकरी करना जानते थे और न व्यापार। फिर ये करें तो क्या? इनकी विद्या और व्यापार तो इनकी धरती थी, जिसके बल पर ये राजाओ जैसा ठाठ रखते थे। ये बहुत दूर की भी नही सोचते थे। बस साल भर का अन्न धन रखकर बाकी किसानो और जमीन मे लगा देते। इसलिए जब ये भारत मे आये तो इनके पास नकदी नाममात्र की ही थी। भाई केवल राम के सबधी ने जब यह सुना कि अब उसके पास बीस हजार तो क्या, बीस सौ भी नही तो उसने अपने तेवर बदले और अपने पुत्र की सगाई तार से सूचना देकर समाप्त करदी। पत्र लिखना भी गवारा न हुआ।

केवलराम यह अमानवीय प्रहार न सह सका। उसे अपने अत समय मे वे सभी याद आये जो कभी उसके सामने हाथ बाँधे खडे रहकर दानी, देश भक्त, धर्मवीर और भी पता नही क्या क्या खिताब देते थे। पर आज जिनकी सूरत दिखाई नही पड रही।

इसी समय मे पूर्ण असमर्थ केवलराम ने असहाय अवस्था मे अपनी पुत्री कमला की गोद म सिर रखकर प्राण छोडे। किसी ने भी उसकी लाश पर दो आँसू न गिराये। रोई तो केवल कमला।

× × × ×

कमला जैसे ही अपने पिता के कर्मकाण्ड से निवृत्त हुई, उसे पुरानी स्मृतियों ने आ घेरा। उसे रह रह करके पुराने दिन याद आने लगे और वह कलेजा मसोस कर रह जाती।

"भारत छोडो' आदोलन जब सिन्ध मे आया तो वह कोई १५ १६ वर्ष की होगी। उसने इतनी छोटी उम्र म भी अपने सहपाठी रमेश के साथ वह कर दिखाया जो बडे बडे नेता भी न कर सके। उन्होने मिल कर लडके लडकियो का एक दल बनाया जिसने स्वातत्र्य युद्ध मे कमाल कर दिखाया। कितने ही लडके और लडकियाँ जेलो मे गए। बतो की मार सही। लम्बी लम्बी सजाएँ काटी पर अग्रेजशाही के सामने नत न हुए। स्वय कमला और रमेश भी दो बार जेल हो आये।

फिर उसे वे दिन भी याद आये जब वह रमेश से मिलकर समाज सुधार के बडे बडे स्वप्न देखा करती थी। रमेश के सामन एक दिन कहने लगी—"रमेश ! मैं ऐसे नर राक्षस से शादी न करूगी जो दहेज की माग करे क्योकि यह मेरा ही नही समस्त नारी जाति का अपमान है।'

पर आज उसके मन की दुनिया बिलख बिलख कर क्रन्दन कर उठी, जिस जिसका उसे आज आभास हुआ कि नारी कही कही पर कमजोर भी है।

इस दु ख दर्द मे कमला को रमेश की याद हो आयी। इच्छा

हुई कि अपने सहपाठी को मन की व्यथा पत्र रूप मे लिख कर ही भेज दे तो जी कुछ हलका हो जावे। पर लिखे किस बूते से! वह आज राजकुमारी से रक बन चुकी है और रमेश अपनी योग्यता और निष्ठा से दिल्ली मे एक बडे सरकारी पद पर पहुँच गया है। क्या वह उसे पहचान सकेगा? उसके मन की बात सुन सकेगा?

कमला के भीतर से एक आवाज आई—"अरी, वह तुम्हारा पत्र पाते ही दौड कर आयेगा। उसे दर्द की पहचान है।" और कमला ने अनेक मानसिक द्वन्दो, सघर्षो और कुठाओ मे मगनपत्र लिखकर डाक मे छोड दिया।

रमेश ने जब लिफाफे पर परिचित हस्ताक्षर देखे तो उसे रोमाच हो आया। उसने धडकते क्लेजे से लिफाफा खोला और एक सास मे सारा पत्र पढ गया। कमला का सौम्य रूप उसकी आँखो मे घूम गया। उसके दर्द की अनुभूति से श्वास कुछ क्षणो के लिए तेज होगई। उसने एक सप्ताह के अवकाश का प्रार्थना-पत्र दिया और अपनी कमला से मिलने पहली ट्रेन से चल पडा।

जब सकट मे कोई अपनी सहानुभूति और हाथ बँटाने आगे आता है तो दर्द एकाएक और बोझिल हो जाता है। मुख से एक शब्द भी नही निकल पाता। यदि कही कोई हरकत होती है तो आँखो मे!

यही हुआ कमला मे। जब उसने रमेश को अपने समक्ष खडे पाया तो मूकता ने उसे जकड लिया। साधारण शिष्टाचार के शब्द भी उससे न कहे गए। अविरल अश्रुधारा से उसने रमेश का स्वागत किया।

रमेश श्वेत साडी से अविष्टित कमला के दु ख विदग्ध मुख को निहार कर ठगा सा रह गया। उसने आगे बढकर बिलखती कमला को छाती से लगाया और उसकी पीठ थपथपाते हुए, प्यार से कहा—

"पगली ! रो रही है। बस बन्द कर यह पागलपन !"

रमेश कमला को अपने सहारे कमरे मे ले गया। उसे बैठा-कर, पास मे रखे गिलास के पानी से मुँह धुलवाया। जब वह पूर्णत आश्वस्त हो चुकी तो कहा—

"बता, मुझे क्या करने को कहती है ?" पर कमला मूक ! अपनी बडी-बडी आँखो से वह रमेश को देखती भर रही।

"बोलेगी नही। चुप्पी तो थी ही। उसे तोडने के लिए तो तुमने मुझे पत्र भेजा था।"

"रमेश तुम !" कमला अधूरे वाक्य कह सकी थी कि उसे बाहर से किसी ने पुकारा। रमेश ने आगे बढकर देखा पोस्टमैन था। उसने एक तार का लिफाफा उसके हाथ मे दिया और हस्ताक्षर लेकर वह चला गया।

कमला ने लिफाफा खोलकर तार पढा। बम्बई से आया था। उसमे लिखा था—"मैं पिताजी की भूल का प्रायश्चित करने के लिए सिंगापुर से बम्बई आ पहुँचा हूँ। क्षमादान के लिये अजमेर पहुँच रहा हूँ"—निर्मल।

कमला सिर पकड कर बैठ गई। उसे समझ न आया कि वह क्या करे ? इतनी विक्षुब्धता देख कर रमेश ने पूछा—

"तार कहाँ का है ?"

उत्तर मे कमला ने तार रमेश के हाथ मे दे दिया। उसने पढा। परेशानी को समझकर उसने कहा—

"अच्छा कम्मो ! तार वाले को भी आने दो। तुम अब आराम से सो जाओ ताकि मानसिक थकान कुछ तो कम हो।"

कमला बिना कुछ कहे अपने बिस्तर पर जाकर लेट गई। रमेश भी कई घंटे की लंबी यात्रा से थका हुआ था, सो उसने भी अपना बिस्तर बंद खोलकर बिछाया और सो रहा।

रात तो बितानी थी ही।

× × × ×

सुबह निर्मल आया, और उसने बिना किसी पूर्व भूमिका के कहा—

"कमला मुझे क्षमा करो। धन और दहेज मुझे नही चाहिए। मैं मानता हूँ कि आपके पिता जी की मृत्यु का कारण

यही हुआ कमला मे। जब उसने रमेश को अपने समक्ष खडे पाया तो मूकता ने उसे जकड लिया। साधारण शिष्टाचार के शब्द भी उससे न कहे गए। अविरल अश्रुधारा से उसने रमेश का स्वागत किया।

रमेश श्वेत साडी से अविष्टित कमला के दु ख विदग्ध मुख को निहार कर ठगा सा रह गया। उसने आगे बढकर बिलखती कमला को छाती से लगाया और उसकी पीठ थपथपाते हुए, प्यार से कहा—

"पगली ! रो रही है। बस बन्द कर यह पागलपन !"

रमेश कमला को अपने सहारे कमरे मे ले गया। उसे बैठा कर, पास मे रखे गिलास के पानी से मुंह धुलवाया। जब वह पूर्णत आश्वस्त हो चुकी तो कहा—

"बता, मुझे क्या करने को कहती है ?' पर कमला मूक ! अपनी बडी बडी आँखो से वह रमेश को देखती भर रही।

"बोलेगी नही। चुप्पी तो थी ही। उसे तोडने के लिए तो तुमने मुझे पत्र भेजा था।"

"रमेश तुम !' कमला अधूरे वाक्य कह सकी थी कि उसे बाहर से किसी ने पुकारा। रमेश ने आगे बढकर देखा पोस्टमैन था। उसने एक तार का लिफाफा उसके हाथ मे दिया और हस्ताक्षर लेकर वह चला गया।

कमला ने लिफाफा खोलकर तार पढा। बम्बई से आया था। उसमे लिखा था—"मैं पिताजी की भूल का प्रायश्चित करने के लिए सिगापुर से बम्बई आ पहुँचा हूँ। क्षमादान के लिये अजमेर पहुँच रहा हूँ"—निर्मल।

कमला सिर पकड कर बैठ गई। उसे समझ न आया कि वह क्या करे? इतनी विक्षुब्धता देख कर रमेश ने पूछा—

"तार कहाँ का है?"

उत्तर मे कमला ने तार रमेश के हाथ मे दे दिया। उसने पढा। परेशानी को समझकर उसने कहा—

"अच्छा कम्मो! तार वाले को भी आने दो। तुम अब आराम से सो जाओ ताकि मानसिक थकान कुछ तो कम हो।"

कमला बिना कुछ कहे अपने बिस्तर पर जाकर लेट गई। रमेश भी कई घटे की लबी यात्रा से थका हुआ था, सो उसने भी अपना बिस्तर बंद खोलकर बिछाया और सो रहा।

रात तो बितानी थी ही।

× × × ×

सुबह निर्मल आया, और उसने बिना किसी पूर्व भूमिका के कहा—

"कमला मुझे क्षमा करो। धन और दहेज मुझे नही चाहिए। मैं मानता हूँ कि आपके पिता जी की मृत्यु का कारण

मेरे पिता जी थे और उनके जाने की क्षति पूर्ति भी अब असभव है। पर यदि आप मेरे हाथ पकडेंगी तो मैं निश्चय-पूर्वक कह सकता हूँ कि आप मुझे सच्चा साथी पायेगी।"

रमेश के आ जाने से कमला को काफी धीरज और सहारा मिला था, इसलिए जब रात को सोई तो सुबह उठने पर उसने अपने आपको तरो ताजा पाया। उसने निर्मल को एकाएक कोई उत्तर न दिया। वह गभीर बनी रही। उसने सरसरी दृष्टि से देखा और पाया कि वह वास्तव मे पश्चात्ताप से जल रहा है। उसके कहने मे किसी भी प्रकार की कृत्रिमता नही है।

कमला ने अपने को साध कर सयत स्वर मे कहा —

"भाई निर्मल ! काश ! तुम्हारा यह विचार और इतनी इच्छा शक्ति कुछ समय पहले होती तो शायद हमारे जीवन वहाव किसी दूसरी ओर होता, पर अब मैने शादी करने का चार ही त्याग दिया है। यह निर्णय मैने उसी दिन कर लिया जिस दिन दहेज रूपी नाग ने डस कर मेरे पिता जी के प्राण ये थे।"

"तो ।" निर्मल ने थके बटोही की भाँति निराश होकर कुछ कहना चाहा।

"अब मैं दहेज जैसी कुप्रथा को समाप्त करने मे ही अपना जीवन लगा दूंगी।" कमला ने अपनी बात कही।

"मैं ।'

"और मैंने इसी लक्ष्य सिद्धि के लिए अपना जीवन-दान क
दिया है। मेरे पिता ही क्या ? असंख्य पिता इस आग में जल र
हैं। कन्याएँ रो रही हैं। समाज हाहाकार कर रहा है। को
भी इसे आगे बढ़कर बंद नहीं करता। भाई रमेश को भी मैं
इसी लिए बुलाया था। भाग्य से आप भी आ गये।" कमला
इतना कहकर रमेश और निर्मल के चेहरों पर आने वाल
भावनाओं को परखा और फिर कहा—"आओ इस सुमंगलवा
वेला में हम तीनों प्रण करें कि आजीवन अविवाहित रहक
एक नया समाज बनायेंगे जिसमें मानव का मूल्य पैसों से नहीं
मानवता से आंका जायेगा।"

× × ×

और आज कमला, रमेश तथा निर्मल अपने अपने ढंग में न
समाज के सृजन और निर्माण में लगे हुए हैं।

●

मेरे पिता जी थे और उनके जाने की क्षति पूर्ति भी अब असभव है। पर यदि आप मेरे हाथ पकड़ेगी तो मै निश्चय पूर्वक कह सकता हूँ कि आप मुझे सच्चा साथी पायेंगी।"

रमेश के आ जाने से कमला को काफी धीरज और सहारा मिला था, इसलिए जब रात को सोई तो सुबह उठने पर उसने अपने आपको तरो ताजा पाया। उसने निर्मल को एकाएक कोई उत्तर न दिया। वह गभीर बनी रही। उसने सरसरी दृष्टि से देखा और पाया कि वह वास्तव मे पश्चात्ताप से जल रहा है। उसके कहने मे किसी भी प्रकार की कृत्रिमता नही है।

कमला ने अपने को साध कर सयत स्वर मे कहा —

"भाई निर्मल! काश! तुम्हारा यह विचार और इतनी दृढ इच्छा शक्ति कुछ समय पहले होती तो शायद हमारे जीवन का वहाव किसी दूसरी ओर होता, पर अब मैंने शादी करने का विचार ही त्याग दिया है। यह निर्णय मैंने उसी दिन कर लिया था जिस दिन दहेज रूपी नाग ने डस कर मेरे पिता जी के प्राण लिये थे।"

"तो ।' निर्मल ने थके बटोही की भाँति निराश होकर कुछ कहना चाहा।

"अब मैं दहेज जैसी कुप्रथा को समाप्त करने म ही अपना जीवन लगा दूंगी।" कमला ने अपनी बात कही।

"मैं...   ।"

"और मैंने इसी लक्ष्य सिद्धि के लिए अपना जीवन-दान कर दिया है। मेरे पिता ही क्या? असख्य पिता इस आग मे जल रहे हैं। कन्याएँ रो रही है। समाज हा-हाकार कर रहा है। कोई भी इसे आगे बढकर बद नही करता। भाई रमेश को भी मैंने इसी लिए बुलाया था। भाग्य से आप भी आ गये।" कमला ने इतना कहकर रमेश और निर्मल के चेहरो पर आने वाली भावनाओ को परखा और फिर कहा—"आओ इस सुमगलकारी वेला मे हम तीनो प्रण करे कि आजीवन अविवाहित रहकर एक नया समाज बनायेंगे जिसमें मानव का मूल्य पैसो से नहीं, मानवता से आका जायेगा।"

× × ×

और आज कमला, रमेश तथा निर्मल अपने-अपने ढंग से नये समाज के सृजन और निर्माण मे लगे हुए हैं।

●

रेशमी रुमाल

चडीगढ के बारे म मैंने काफी सुन रखा था। परन्तु पजाब की इस सुन्दर राजधानी को देखने का यह मेरा पहला ही अवसर था। हिमालय के आचल मे बसी हुई यह नगरी और उसकी स्थापत्य कला हर दर्शक का मोह लेती है। हम दिन भर के थके मादे जैसे ही विश्राम-गृह मे लौटे कि छमाछम वर्षा होने लगी, जिसने वातावरण को एकदम मनमोहक बना दिया। वर्षा थमते ही चडीगढ का महिला समाज अपने जीवन साथियो के सग वर्षा का आनन्द लूटने के लिये विशाल राजपथो पर चहल कदमी करने निकल पडा। उनका सुरुचिपूर्ण शृगार देखकर समझ मे नही आ रहा था कि एक लडाकू कौम की नारियाँ भी इतनी शृगारिक हो सकती हैं। पता नही कब तक मैं इस विचार मे खोया रहा। इतने मे मेरे मित्र न निस्तब्धता भग करते हुए कहा —

"मित्र आज तो कुछ ऐसा सुनाओ, जिसस मन गुदगुदा उठे।"

"क्या सुनाऊँ?' मैंन पूछा।

"बस, हो कोई प्यार म सराबार कहानी।"

"तो सुनो।' मैंने जमकर बैठते हुये कहना शुरु किया —

सतो

"मेरी थी एक सहपाठिन। नाम मनोरमा। हँसमुख और खुश मिजाज। सिंधी कवि की यह उक्ति उस पर सोलह आने पूरी उतरती थी कि यूँ तो मनुष्य सब मनुष्य हैं, परन्तु किसी-किसी मनुष्य मे खुशबू आती है बहार की। पिछले पाँच वर्षो से हम न केवल एक दूसरे के मित्र थे अपितु प्रेरक भी। यही कारण था कि हम दोनो हर परीक्षा मे न केवल उत्तीर्ण ही होते पर महाविद्यालय मे प्रथम श्रेणी मे भी आते।"

"पर पता नही क्यो, उसकी एक पडोसिन को हमारी यह मित्रता फूटी आख भी न भाती थी। वह हम लोगो के खिलाफ तरह तरह की बाते गढती और फिर उन्हे मोहल्ले की स्त्रियो को नमक मिर्च लगाकर बताती।"

"एक दिन की बात है कि हम दोनो छत पर खडे नीचे रोड पर चलने वालो को देख रहे थे कि अचानक पडोसिन को अपनी ओर घूरते हुए देखा। हमे लगा मानो बाज निर्दोष पक्षियो पर झपटा कि झपटा। हम फौरन बैठ गये। बैठने के बाद भी उसकी गिद्धदृष्टि हम दोनो पर जमी रही। तब मनोरमा को एक तरकीब सूझी। वह छत पर लेट गई और लेटे ही लेटे सडक के रोलर की तरह लुढकते लुढकते सीढियो तक जा पहुँची। मैंने भी उसका अनुकरण किया। नीचे आकर हम दोनो खूब हँसे और आधे घटे तक हँसते ही रहे। तब जाकर कही शाति मिली।"

"वाह ! खूब छकाया !!" कहते हुए मित्र ने ठहाका लगाया।

"पर वह सहज मे मानने वाली न थी। वह हर मौके की तलाश मे रहती, जिससे हमे गपशप लडाते देख सके और भर पेट हमारा मजाक उडा सके। पूरी काइया थी।" मैंने मुस्कराते हुए कहा।

"कहे जाओ। आज ऐसी ही कहानी सुनने को जी चाहता था।" मित्र ने उत्कठित हो कर कहा।

"हा तो इस प्रकार हमारी मित्रता मे रग चढता ही गया। हम एक दूसरे को देखे बिना एक दिन भी न रह सकते थे। मैं उसमे इतना तन्मय होगया था कि अनचाहे उसका नाम मेरे मुँह से निकल जाना। मैं स्कूल मे, घर मे तथा कही भी जाता तो उसी का रूप मेरे सामने आता। कभी कभी ऐसा भी होता कि मैं किसी मित्र से बात करते करते यह भी भूल जाता कि मैं उससे बाते कर रहा हूँ या मनोरमा से। तब मुझे अपनी स्थिति का आभास होने पर बडा सकोच होता। जब मैं अपनी मन स्थिति मनोरमा से कहता तो उसकी स्थिति अपने से भी अधिक विकट पाता। उसकी बाते सुनकर मुझे रोमाच हो आता और यो लगता कि हृदय गगन से प्रेमरूपी वर्षा की फुहारें मधुर निनाद से गिर रही है। मैं उसमे आनन्द निमग्न होकर नहा रहा हूँ। ओह ! वह स्वर्गीय और अनिर्वचनीय सुखानुभूति।"

"मित्र! मेरे पांवो को तो मानो पाखे लग गई थी। वे बिना मेरे से पूछे आप ही आप चलते और उसके घर पहुँच जाते। फिर वर्षा हो या तूफान, गर्मी हो या सर्दी, उन्हे वहाँ जाने से कोई भी न रोक सकता था। वहाँ पहुँचने के पश्चात् मुझे पता चलता कि मैं कहाँ हूँ। मनोरमा के माता पिता मुझ पर बडे कृपालु थे। हम लोगो ने भी उन्हे कभी ऐसा अवसर नही दिया था कि वे हम पर रत्ती भर भी शका कर सकें।"

"एक बार गर्मी की छुट्टियो मे परिवार सहित जब वे अपनी जमीदारी पर गये तो मुझे भी अपने साथ लेते गये। प्रभात का सुहावना समय था! ठडी ठंडी पुरवैया चल रही थी। हमे जमीदारी पर ले चलने के लिए एक बैलगाडी खडी थी। मनोरमा के पिता तो घोडे पर और बाकी हम सब बैलगाडी मे बैठ गये। मनोरमा मेरे से सटी हुई बैठी थी। यह पहला ही अवसर था जबकि हम इतने नजदीक बैठे थे। इस नजदीकी से हमे एक विचित्र सी शारीरिक उष्णता का अनुभव हुआ। मैंने मनोरमा की ओर देखा। लज्जा से उसका कमल-सा मुखडा और भी आरक्त हो उठा। उसी समय प्राची मे अनत रूप राशि लिये हुए बालारुण का उदय हुआ। मैं कभी मनोरमा के मुख की ओर, और कभी बालरवि की ओर देखता। मैं समझ नही पा रहा था कि किसने किसका रूप चुराया।"

"जमीदारी पर पहुँचने के बाद मनोरमा के पिता जी ने मेरे

रहने के लिये अलग एक कमरे का प्रवध कर दिया था। उन दिनो के सुख का वर्णन कर सकने मे मैं असमर्थ हूँ। वह तो गूँगे का गुड है। आधुनिक ढग से निर्मित बगला। आस-पास भोले-भाले हिन्दू मुसलमान किसानो के घर। सामने मौज मे बहती हुई सिंध नदी। दूर दूर तक फैले हुए हरे-भरे खेतो ने मेरा मन हर लिया। हम सब मिल कर साय प्रात सिन्धु नदी पर घूमने जाते। कभी कभी केवल हम दोनो होते तब प्रात कालीन मद और शीतल हवा हमारे शरीरो को और भी प्रफुल्लित कर देती, तब हम किसी सुन्दर स्थान पर बैठ जाते और जीवन के हर पहलू पर गम्भीरतापूर्वक विचार करते।''

"कभी-कभी हम खेतो पर भी चले जाते। मनोरमा किसान रमणियो से, और मैं किसान युवको से उनके दुख सुख को जानने का यत्न करते। पठन-पाठन तो चलता ही। कुछ समय हम गौशाला मे भी चले जाते, जहाँ पशुओ के संबध मे जान-कारी करते। सबसे सुखमय समय वह होता, जब रोटी-पानी निवृत्त होकर सब लोग बगले की छत पर आ जाते, तब मनो-रमा अपने सुमधुर कंठ से सुन्दर गीत गाती। खासकर चाँदनी रात मे वह अपना प्रिय गीत—"जोगी मत जा, मत जा, पाँव पड़ूँ मैं तेरे" पूर्ण आवेश मे आकर गाती तो उस शात वाता-वरण मे भी मीठा दर्द भर जाता। जैसे सचमुच कोई निर्मोही

जोगी उस प्रेम दिवानी को छोड कर चला जा रहा हो। तब हम सब की आँखे सजल हो आती।"

"इस प्रकार सुख के सागर मे हमारी नाव बढ रही थी। अचानक मनोरमा गंभीर रहने लगी। मैं इसका कारण समझ नही सका। एक दिन शाम को नदी पर हम दोनों घूम रहे थे। बातो ही बातो मे सुहावना झुटपुटा हो आया। अचानक मनोरमा मेरे एक हाथ को अपने दोनो सुकोमल हाथों मे लेकर, कुछ क्षणो तक प्रवाहमान नदी की ओर देखती रही, मानो जल देवता को साक्षी रखकर कोई प्रतिज्ञा की हो। उसके इस स्पर्श से मुझे भी रोमाच हो आया, पर कुछ कह न सका। हम नि.शब्द घर की ओर लौट आये।"

"इस प्रकार कुछ दिन और बीतने पर, एक दिन वह मेरे कमरे मे आई। उसके मुख से ऐसा प्रतीत होता था कि वह किसी बीहड वन प्रातर मे फँसकर बाहर निकल नही पा रही। उसने बैठते ही प्रश्न किया:—

"आज की स्थिति मे विवाह करना आवश्यक है क्या ?"

एक युवक उस युवती को क्या उत्तर दे, जिसे वह हृदय से प्यार करता हो। जो उसके प्रति अपनी प्रेमिल भावनाओं की अभिव्यक्ति तो न कर पाया हो पर उसका रोम रोम उसमे रमा हुआ हो। फिर भी मैंने हिम्मत बटोर कर कहा—"मनुष्य एक

सामाजिक जीव है। समाज से अलग उसकी कोई सत्ता नही, फिर भी आज की स्थिति मे युवक विवाह न करे तो समाज को कोई आपत्ति नही होनी चाहिए।

"तब इस मानवी दह का क्या होगा?' मनोरमा ने अकृत्रिम गभीरता से पूछा।

"सभव है ऐसा कोई समय रहा हो जबकि आर्यों ने सख्या और जन बल बटाने के लिए दस सतानो का विधान बनाया हो। पर मेरे विचार से आज वह स्थिति नही है। इसलिए अच्छा नागरिक वह कहलायेगा जो आज का रग ढग देखकर अविवाहित रहे और यदि विवाह करे तो सयमित रहते हुए सतान की चिता न करे। अगर फिर भी उसका मन न माने तो अधिक से अधिक दो सतानो पर सतोष करे।

"और इसके बाद?'

"नरक!" मेरा उत्तर सुनकर वह चुपचाप लौट गई। पर मैंने देखा कि वह जीवन के उस चौराहे पर पहुँच चुकी, जहाँ मे आगे बटने के लिए कोई न कोई रास्ता चुनना ही होगा।

एक सप्ताह बाद। उस दिन शाम होने न होने आकाश मे जल भरी काली बदलिया घिर आई थी। वातावरण कुछ ऐसा मोहक हुआ कि हम दोनो अपनी अपनी उन्मुक्त भावनाओ मे

विचरते हुए घूमने निकल पडे। एकाएक मनोरमा ने मौन तोडा, बोली—"मैं तुम्हे प्यार करती हूँ।"

"भला यह भी कोई बतलाने की बात है ?" मैंने मुस्कराकर कहा।

"पर मैं चाहती हूँ कि हमारा पवित्र प्रेम विकृत न हो। शाश्वत रहे। हम आज की तरह आजन्म प्यार करते रहे। हमारे निकट रोग शोक न आये। हम सदा स्वस्थ रहे।" मनोरमा ने बदलियो के पार देखने का प्रयत्न करते हुए कहा। मानो उसे ऊपर आकाश मे कोई दिव्य दर्शन हो रहा हो।

"मै तुम से पूर्ण सहमत हूँ, मगर इसे शाश्वत रखने के लिए उपाय क्या है ?"

"यही कि हम सदा के लिए जुदा हो जाये।"

"तो फिर ऐसा ही हो।"

और मनोरमा ने मुझे एक रेशमी रुमाल देते हुए कहा—"यह मेरे प्यार की निशानी है।"

"फिर ?" मेरा कथा श्रोता मित्र पूछ बैठा।

"फिर क्या ? परस्पर प्यार करने वाली दो आत्माए पहली और अंतिम बार एक दूसरे से मिली और सदा के लिए जुदा हो गई।"

"पर, जोगी मत जा, मत जा, का क्या हुआ ? अपने हाथों ही जोगी को विदा कर दिया।" मित्र ने कहा।

"दोस्त ! यही तो समझने की बात है।" मैंने उठते हुए कहा।

●

बटवारा

"चाचा ! ओ चाचा !" किसी ने कोमल स्वर से पुकारा।

"क्या है बेटी !" रमजानी चाचा ने आवाज पहचान कर पूछा।

"चाचा ! अब नही सहा जाता !"

"कुछ कहे भी ।"

"बच्चे रो रो कर पागल हो रहे हैं। वे जो बार-बार कहते थे कि गायें गईं तो क्या हुआ ? कर्ज से तो मुक्ति मिली। वही आज ठंडी आहें भरते है। भगवान के लिए साहूकार से मेरी 'लक्खी' (गाय) छुडा लाओ। गौरी ने अपने जेवरो की पोटली चाचा के सामने रखते हुए कहा ।

"या मौला ! गरीबों पर ऐसा कहर ? बेटी ! मेरे रहते हुए यह नहीं होगा। अपने जेवर उठालो। लक्खी को साहूकार ले गया तो क्या ? मेरे घर यह दूसरी लक्खी खडी है । इसे ले जाओ। जैसे यहाँ, वैसे वहाँ।"

"नही चाचा ! नहीं ! ऐसा नही होगा। जैसे लक्ष्मण-वैसे रहीम। रहीम से दूध छीन कर मेरा भला कैसे होगा ? हाय मेरा वह गेरू (गाय का बछडा) जिसे भर पेट दूध पिलाया करती थी। उस बेजबान को साहूकार के घर एक धार भी नसीब

नही होती। बेचारा सूखकर काटा हो गया है।" यह कहते कहते अत मे गौरी के आसुओ का बाँध टूट पडा।

"न रो बेटी ! न रो ! हम गरीब रो रो कर जिदगी कैसे गुजार सकेंगे ?"

"चाचा ! मेरी लक्खी लादो उस कसाई से !"

"देख गौरी ! साहूकार का गहने देने से अच्छा है कि एक दूसरी गाय खरीद ली जाय। चाचा रमजानी ने सुझाव रखा।

"तुम नही समझ सकते। दूसरो की आँखो मे जो गाय है, वह मेरे लिए मा जाई सगी बहन के समान है। चाचा ! वह दिन भूल गए जब लक्खी ने शेरू की जान को बचाने के साथ ही मेरे लक्ष्मण को भी बचाया था। उस समय को याद करते ही मेरे तो रोगटे खडे हो जाते है।'

" !" चाचा रमजान ने कोई उत्तर नही दिया। गौरी भाव विभोर होकर रोते रोते कहने लगी—

"उस समय लक्ष्मण यही कोई सवा साल का होगा। लक्खी को ब्याहे भी कोई दो तीन दिन हुए थे। पूनम की रात थी। वर्षा को निकट आया देख हम खेत का काम शीघ्र ही समाप्त करने के लिए दिन रात काम मे लगे रहे। उस दिन झोपडी के बाहर बछडे के पास ही लक्ष्मण को खटिया पर सुलाकर हम दोनो खेत मे काम करने लगे। मेरी यह लक्खी भी वही पास मे बैठी जुगाली

कर रही थी। उस शांत रात्रि में उसके गले की घंटी रह रह बज उठती। उसका मधुर निनाद दूर तक फैल जाता। अचानक घंटी बजना बंद हो गई। हमने सोचा शायद गाय धरती पर गर्दन टिकाकर सो गई है। पर फिर वह एकाएक जोरों से बजने लगी, मानो गाय सरपट दौड़ रही हो। खतरा आया जान हम दोनों झोंपड़ी की ओर भागे। हमने देखा तीन भेड़ियों ने बछड़े और लक्ष्मण पर हमला बोल दिया था। लक्खी ने रक्षा का और मार्ग न देख दोनों बच्चों को अपने व्यूह में ले लिया और चक्कर पर इतनी तेजी से दौड़ने लगी कि भेड़िये चाहकर भी अंदर न घुस सके और इतने में हम मदद के लिए पहुँच गए।"

लक्खी की यह गाथा सुनकर चचा रमजानी के बोल न फूटे।

गौरी ने कहा—

"बोलो चाचा! ऐसी देवता गाय को उस निर्दयी के पास रहने दूँ!"

स्वीकृति सूचक सिर हिलाते हुए चचा रमजानी गौरी की गाय लेने के लिए अपने घर से बाहर हो गए।

गड्डा रोड के उस पार जहाँ आज भारत और पाकिस्तान की सीमाएँ मिलती हैं, थोड़ी दूर पर रामनगर नाम का एक गाँव बसा हुआ है। जहाँ सदियों से हिन्दू मुसलमान बड़े प्रेम से रहते चले आ रहे हैं। रामनगर के रहवासियों का जीवन भी बड़ा

अजीब है, समय पर वर्षा होगई तो उनकी खुशियो का क्या कहना ? जिधर देखो उधर हरियाली ही हरियाली नजर आती। मानो थर पारकर का सुप्त सौदर्य जागकर करवट ले रहा हो। ऐसे समय मे किसान खेतो मे हल जोतने निकल पडते। चरवाहे ऊँटो की लम्बी गर्दनो मे बधी घटियो के स्वर ताल पर कजली गाते, ढोरो को चराते हुए जगलो मे रम जाते। गावो की बहुएँ और पनिहारिन मदभरे नयनो मे कजरा डाले, सोलह शृगार किए लबालब तालाबो से पानी भरने निकल पडती। वे रेतीले टीलो पर कभी ऊपर चढती और कभी नीचे उतरती हुई, अपने रग बिरगे वस्त्रो मे इतनी शोभायमान प्रतीत होती कि मानो स्वर्ग की अप्सराए भूतल पर उतर आई हो। सिरो पर चमकते हुए कलश। सुडौल कसा हुआ शरीर, पीठ पर नागिन की तरह लहराती हुई सुदीर्घ चोटी पायलो की झनकार के साथ जब कभी इस टाग पर और कभी उस टाग पर ताल देती हुई दिखाई देती तो इस मोहक दृश्य को यदि स्वय कामदेव देख पाते तो सुध बुध खो बैठने। फिर आदमी की तो हैसियत ही क्या ?

परन्तु जिस वर्ष वर्षा नही होती, तो उनके दु खो का पार न रहता। अपने पेट के लिए तो इधर उधर से अनाज खरीद लाते पर चौपायो के लिए चारा लाना सहज नही था। फिर भी जिस किसी तरह उनसे बन पडता वे अपने पशुधन की जी जान से रक्षा करते। जब वे उनकी रक्षा करते कगाल हो जाते तो अत मे उनकी

कगाली देखकर साहूकार भी कर्ज नही देते तो वे अपनी आखो के सामने भूख से तडफते हुए पशुओ को मरते देखते। कर कुछ नही पाते।

रामसर के लोगो ने जब अपने सिंध मे लीगी तूफान के विषय मे सुना तो वे भयभीत हो उठे। उन्हे लगा कि शीघ्र की कोई महामारी आने वाली है जो हमारे खेतो, पशुओ और हमारी खुशियो को हडप जायेगी। इस भय के कारण घर की नारिया जो वनचरो की भाति आनदपूर्वक खेतो मे आया जाया करती थी, अब घरो मे बद रहने लगी। जहाँ पशुओ को उन्मुक्त होकर विचरने दिया जाता था वहाँ अब उन्हे लोग वाडो मे बद रखने लगे। जहाँ घरो के दरवाजे खुले पडे रहते थे, वहाँ उनमे भारी भरकम ताले लगाये जाने लगे। जहाँ राहगीर हजारो के जेब-रान और स्त्रियो के साथ अमावस की रात जगल मे पडाव डाल कर काट लेते थे, वहाँ अब दिन दहाडे डाके पडने लगे। मानो सिन्ध पर किसी शैतान ने अपना रग जमा दिया हो और उसके भय से इन्सानियत डगमगा रही हो। प्रेम और एकता थर्रा उठी हो।

फिर उन्होने अचानक यह भी सुना कि अगरेज भारत छोड कर चले गये हैं। जाते जाते वे भारत माता के दो टुकडे कर गए। हमारा प्यारा घरपारकर भी बिना हमारी राय के

पाकिस्तान मे मिला दिया गया है। वे गरीब समझ नही सके कि ऐसा क्यो किया गया। जबकि हमारा रहन सहन, हमारी भाषा, हमारे गीत सब राजस्थानी है। तब फिर किस आधार पर हमे पाकिस्तान मे मिला दिया गया? वे केवल ठडी आहे भर कर रह जाते।

इधर रामसर के हिन्दू अभी सोच ही रहे थे कि वे सिन्ध के अन्य हिन्दुओ की भाति भारत जावे या पाकिस्तान मे रह कि अचानक ही पाक सरकार की एक विज्ञप्ति निकली—"हिन्दू चौपाया माल लेकर भारत नही जा सकते।' बस फिर क्या था? चारो ओर खलबली मच गई। जिन गरीबो का धन ही पशु थे वे कैसे उन्हे छोडकर भारत जाते? पर दूसरी ओर धर्म सकट भी था, कौन जाने कब क्या हो जाये। लीगी गुण्डो के हाथो कब बहू बेटियो की आबरू धूल मे मिल जाये? उन हैवानो के सामने ग्राम के नेक मुसलमान भी क्या कर सकते?

× × × ×

गौरी के लिए यह समाचार आत्महत्या के समान था। वह किसी भी हालत मे अपनी लक्खी गाय को पाकिस्तान मे छोडने को तैयार नही थी। उसे हर प्रकार से समझाया गया। डराया, धमकाया। पजाब की दर्दभरी घटनाय सुनाई गई। पर वह न मानी। लक्खी के गले से लगकर रोने लगी। उसके पति गोपाल

जब सब प्रकार से समझाकर हार चुके तो अंत में वह चचा रमजानी के पास पहुँचे।

चचा रमजानी पहले से ही गौरी का हाल सुन चुके थे। वे कोई ऐसा मार्ग निकालने की तलाश में थे कि जिससे साँप मर जाये और लाठी न टूटे। उन्होंने व्यथा भरे स्वर में गोपाल से कहा—

"गोपाल! तुम घर चलो। देखो मैं कोई-न कोई राह खोज रहा हूँ। मालिक मेहरबान है। वह कोई उपाय तो सुझायेगा ही।

इसके बाद काफी रात गए रमजानी अपने इकलौते बेटे और उसकी बहू से कोई मन्त्रणा करते रहे।

× × × ×

दूसरे दिन जब सब लोग एक दूसरे से मिलकर रोते बिलखते जुदा होने लगे तो बड़ा हृदय विदारक दृश्य उपस्थित होगया। भला जब एक पक्षी भी अपना घोंसला छोड़ने को तैयार नहीं होता, तब वे तो मानव थे। उन्होंने कितनी ही सर्दियां गर्मियां उन झोंपड़ों में रहकर बिताई थीं। दीपावली और ईद मिलकर मनाई थीं। भला वे, चुपचाप उन घरों को कैसे छोड़ देते?

गौरी गाय के गले में बाहें डाले जोर-जोर से रुदन कर रही थी। उसका रोना देखकर वहाँ पास में खड़े अन्य लोगों की

आखे भी नम हो आई । होती क्यो नही, ये तो 'राजनैतिक स्वार्थो से दूर विशुद्ध मानव थे । इतने मे वहाँ पर चाचा रमजानी आये और उन्होने कडक कर कहा—

"ठहरो । यह सब क्या है ?"

लोगो ने देखा कि चाचा के चहरे पर एक विचित्र ओज और तेज दमक रहा है । गौरी और अन्य सभी रोना भूल कर चाचा को देखने लगे । उन्होने कहा—

"गौरी ! गाय के सभाल के लिए भाई गोपाल मेरे साथ रहेगा । देखे मेरे जीते जी कौन उसको छेडता है ? रहीम, गौरी और लक्ष्मण के साथ भारत जायेगा । पाक कुरान की कसम है कि हम जल्दी तुम सबको वापिस बुला लेंगे । भाईचारे और प्रेम से अंगरेजो की खोदी हुई खाई को पाट देंगे ।" इतना कहकर चाचा रहीम की ओर घूमकर बोले —

"बेटा जाओ ! वीर राजपूतो की तरह जाओ । जब तक दो विरहणियो की आहे और दो पिताओ के करलाप उस बनावटी सीमा को मटियामेट न करदे । हमारे हल प्रात काल की सुन्दर वेला मे सीमा के नाम पर छोडी हुई जमीन को न रौंद डाल ।

"बेटा । विश्वास और धैर्य से उस घडी की प्रतीक्षा करो, जब तक कि दोनो ओर की जनता प्रेम और भाई चारे से मिल

न जाय। हमारी गायें फिर स्वच्छन्दता स वहाँ हरी-हरी घास न चर और हमार मतवाले युवक झूम झूम कर वरसाती ऋतु म मधुर गीत न गाय। तव हम राजनैतिक गुण्डो को वता सकेंगे कि हम सव हिन्दू मुसलमान भाई है।

और अन्त मे चाचा न कहा—

मजहव नही सिखाता आपस म वैर करना हिन्दी है हम, वतन है हिन्दोस्ता हमारा।

× × × ×

रामसर क हिन्दुओ का वह काफिला धीरे धीरे भारत की ओर वढ चला। जव वह आखो स ओझल होगया तो वटवार स विदग्ध चाचा रमजानी भी अपने अन्य साथियो सहित गाव की ओर लौट पडे।

❂

टूटा घड़ा

"रहने भी दो। क्या रोज-रोज जाने की रट लगाये रहते हो ? आग लगे इस रेल को, जो निन्य कितने ही लोगो को परदेशी बनाती है। फूल जैसे दिलो को तोडती है। बेरहम पत्थर-दिल कही की ? मुझसे पूछो, तुम्हारे जाने से मुझ पर क्या गुजरती है ? न जाने कलेजे मे क्या होने लगता है ?" अजीत कौर ने रूठते हुए कहा।

"धत् पगली ! मै बहुत दिनो के लिए थोडे ही जा रहा हूँ। छुट्टियो मे तो आऊँगा ही। और भला बनाना तो कलेजे मे क्या होने लगता है ?" मैने हँसते हुए कहा।

"यही तो कठिनाई है कि मै दिखा नही सकती। केवल महसूस करती हूँ। बस यो समझो कि गूगे का गुड है। फिर भी जब तुम जाने की बात करते हो तो यो लगता है कि कोई सुखद स्वप्न टूट गया हो। दिल कहता है, कही एकात मे बैठकर जी-भर रो लूं। पर तुम हो कि · ।"

"पत्थर ·· ।" मैने अजीत कौर का वाक्य पूरा करते हुए कहा—

"देखो जीत। कुछ धीरे बोलो। कोई सुनेगा तो क्या कहेगा तुम बच्ची तो हो नही। जैसा मन मे आया कह गई। जबान को काबू मे रखना चाहिए।"

"क्या हृदय की बात कहना पाप है ?" अजीत दुगनी जोर से बोली— "मैं तो कहूँगी, एक बार नही हजार बार कहूँगी। मैं तुम्हें नही जाने दूँगी, नही जाने दूँगी।"

अंत मे अजीत को रुआसी हो आयी।

अब उस पगली को कौन समझाये कि नौकरी वाला तो जायेगा ही। रुक नही सकता भले ही मन का पंछी न जाने के लिए हजार फडफडाये।

कितनी भोली है यह अजीत ? एक माह के अदर ही उसने मेरे साथ घनिष्ठ नाता जोड लिया। मुझे समझाने मे देर तो लगी पर वह मान गई, यही मेरे लिए सतोषजनक था।

× × × ×

जब ठीक बीस दिन पहले मैंने अपने मा बाप के घर को वर्षो बाद आकर खोला, तब सारे गाव के बाल-वृद्ध, नर-नारी मेरे प्रति ममत्व और अपनत्व जताने आये थे। उनमे एक स्त्री ने मेरी बलाएं लेकर कहा—"बेटा बहुत दिनो बाद आये। तुम्हें क्या मालूम ? तुम्हारी मा और मैं कितनी गहरी सहेलिया थी। हम दोनो मे सगी बहनो जैसा प्यार था। मैं तुम्हें अकेला नही रहने दूँगी।" फिर उसने पुकारा—"जीतू री! ओ जीतू !! इधर तो आ। वहाँ लडकियों मे मुँह छिपाये क्या खडी है ? तू इसे जानती नही री ! यह रणजीत है। तुम दोनो बचपन मे एक साथ खूब खेलते थे और कितना प्यार था दोनों मे। जा तो कुए से

एक घडा पानी ले आ। फिर दोनो मिलकर घर साफ कर लो। इतने मे मैं रणजीत के लिए नाश्ता तैयार करती हूँ।" यह कह कर अजीत की मा वहाँ से चली गई। मैं घर मे यो ही इधर-उधर हेरा-फेरी करता रहा। इतने मे अजीत पानी का घडा सिर पर रखे आ पहुँची। पर सकोचवश वह यह निश्चित न कर सकी कि घडा रखे कहाँ? उसके मनोभाव को ताड कर मैंने आगे बढकर घडा उतरवाना चाहा। पर मैं घडे को ठीक से पकड भी न सका था कि अजीत ने उसे छोड दिया। टूटता हुई आशाओ की भाँति हम दोनो को भिगोता हुआ कडी जमीन पर बिखर कर घडा चूर-चूर हो गया।

"यह क्या किया आपने ?" अजीत ने रोनी सूरत बना कर कहा।

"मैंने किया या तूने ?" यह कह मैं मुस्कराया। अजीत और भी जोर से खिलखिला पडी। बोली—

"अब मा से हड्डी कौन तुडवायेगा ?"

"अरे क्या हुआ ?" यह कहते हुए अजीत की मा ने प्रवेश किया। दोनो हाथो मे कुछ खाने पीने की चीज थी।

"मा। यह घडा उतारते समय हाथ से छूटकर ....।" अजीत ने हिम्मत कर कहा।

"तो और ले आ। कोई इसी के भरोसे थोडे ही है।" अजीत

की मा ने बात को आई गई करके मुझे प्यार से नाश्ता करवाया। बीच बीच मे मेरे विषय म जानकारी भी लेती जाती कि तुम इतन दिन कहाँ रहे ? कैसे पढे ? इतनी तकलीफ पाकर भी हमे याद नही किया। हम कोई बेगाने थोडे ही थे।

अजीत पानी का दूसरा घडा लेन के लिए इठलाती हुई जा चुकी थी।

अपना बाल मित्र पाकर मेरा जीवन गुलाब क फूल की तरह पुष्पित हो उठा। हर काम मे आनद आता। अगो के गुब्बारे छूट छूट कर जीवन के आकाश मे मडराने लगे। इतने दिनो तक मैं जिस पारिवारिक सुख क लिए तरसता रहा था, वह यहाँ आन से सहज ही म मिल गया।

हम खेतो पर साथ साथ जाते और काम करते। वह मुझे लोक गीत सुनाती और मैं उस कहानियाँ सुनाता। उसका माधुर्य पूर्ण कठ स्वर मुझे आप्लावित कर देता। जब तक वह गाती तब तक मैं अवर्णनीय सुख की तद्रा मे लवलीन रहता। उठती हुई फसला वाल खेत म जब वह मुझे जलपान करवाती तब मैं धरती से ऊपर उठ कर किसी अन्य लोक मे खो जाता। मैं मन ही मन कहता—यह इतन दिन क्यो न मिली।

अजीत अपन माता पिता की इकलौती बेटी थी। पिता खेती करते थे। अजीत का यह ग्राम काश्मीर और पजाब की सीमा

पर था जिससे अजीत ने काश्मीरियो का सौन्दर्य, पजाबियो का सुडौल शरीर एव ग्रामीणो का भोलापन विरासत मे पाया था। अपने उस छोटे से गाँव मे वह राजकुमारी सी लगती थी। कही विवाह हो अथवा अन्य कोई आनन्द का त्यौहार उसे अवश्य बुलाया जाता। इन उत्सवो मे जब ढोलक पर थाप लगाकर "परदेसिया माहिया घर आ, असा राह विच अखियाँ विछाइया नें" पजाबी लोक गीत गाती तो श्रोतागण भाव विभोर होकर उसकी स्वर लहरियो मे बह जाते। वह प्रसन्न वदना तो इतनी थी कि छोटी छोटी बातो पर ही खिलखिला पडती।

प्रति शनिवार को ग्राम आने का वचन देकर मैं शहर लौट जाता। बडी कठिनाई से सप्ताह बीतता।

जब जब मैं लौटकर आता, सध्या के समय अजीत मेरी प्रतीक्षा मे खडी छत पर मिलती। मुझे देखते ही वह दौड कर आती और कहती—

"आज गाडी लेट थी क्या ? मैं कब से राह देख रही हूँ ?"

"नही तो। आज तो हमेशा से कुछ पहले ही आया हूँ।" मैं कहता।

"झूठ भी क्या बोलते हो ? यो क्यो नही कहते कि किसी सरोज मनोज ने रोक लिया था। वे पढी लिखी जो ठहरी।

और मैं कोरी गँवार ।" अजीत रूठकर कहती। मैं उसे सम झाते हुए कहता।

"अरी तेरी और उनकी क्या बराबरी ? यहाँ दैवी सौंदर्य और वहाँ पाउडर से ढका पीलापन।'

"अच्छा जी, उडाने मे भी खूब हो।"

"उडाना कैसा ? सच कह रहा हूँ। तुम जिस किसी शहरी सरोज मनोज के लिये कह रही हो, उनके लिए प्यार का मत लब पैसे के अलावा कुछ नही है। और तुम ।"

"अच्छा अच्छा ! बस करो।" यह कह कर वह अनोखी चितवनो से देखती हुई मेरे साथ हो लेती।

कुछ महीनो के बाद जब एक सोमवार को मैं अपनी नौकरी पर जाने लगा तब मैने डरते डरते कहा—

"अजीत ! मुझे सरकार छ माह के लिये एक ट्रेनिंग मे दूसरे शहर मे भेज रही है। इस बीच मे हमारा मिलना शायद न हो सके।"

भयभीत मृगी सी होकर अजीत ने कहा—

"मेरी मानो तो यह बैरिन नौकरी ही छोड दो। घर जमीन सभालो। यही तुम्हे जरा सी मेहनत से माला माल कर देगी। क्या दिन रात नौकरी म पिलते हो। और सुनो, पता नही, आज

कल बापू और मा मेरे बारे मे दिन रात क्या सोचते और आपस मे कहते रहते है ?

ऐसे समय मे तुम्हारा छ माह के लिये दूर जाना मुझे अच्छा नही लगता ।

पर मै तो विवश था, सो अजीत को व्यथित मन छोडकर चल दिया । और जब मैं प्रशिक्षण अवधि पूर्ण कर घर आया तो मन मे असीमित उछाह था । अभिनव ललित कल्पनाएँ एव सरस और सजीले स्वप्नो को अन्तराल मे सजोये हुए था, जिनकी स्वामिनी थी अजीत अजीत मेरे भावी जीवन की प्रफुल्ल वदना जीतू किलकती और हँसती । पर इस बीच यदा कदा एक पैनी फास जैसा भय मेरी रगीन कल्पनाओ और सुहाने सपनो को रौंदता हुआ कलेजे मे पैठ जाता ।

छ माह से बन्द पडे घर को जब खोला तो आस लगाये था कि अजीत मुक्त पछी की तरह उडती हुई मेरे पास आयेगी । पर वह नही आयी । आयी उसकी मा । इधर उधर के समाचार लेकर वह लौट गई । मेरी स्मृति तरु से लिपट कर लहरी हुई वेलि अजीत की उसने कोई चर्चा नही की । और न मैं ही कुछ पूछ सका । मैं पूछ भी कैसे पाता ? मुझे तो यह बदला हुआ रग देखकर काठ मार गया था । रात भी सो न सका । अजीव अजीव आशकाओ और विचारो के गहरे समुद्र मे डूबा रहा । रह रह कर हृदय मे एक ही बात उठती होती—जीतू को क्या होगया ?

दूसरे दिन सुबह मैं नहा धोकर अजीत की बाट जोहने लगा। सूरज चलकर सिर पर आगया और पश्चिम मे ढलने लगा, पर पर वह न आई। मैं कुछ भी खा पी न सका। मेरे अतस् मे व्याप्त प्यार को चिंता नागिन ने खूब दांत लगाये और इतने लगाये कि वह प्यार ही न रहा। तडपता हुआ रुदन मात्र रह गया।

जब रहा न गया तो शाम को अजीत के घर पहुँचा। वह रसोई मे थी। उसे निहार कर मैं दग रह गया। छ माह के जरा से अर्से मे क्या से क्या होगई। बस यह समझ लीजिये कि सूखी हुई बेल। मुझे आया जान कर अपने घुटनो पर ठुड्डी टिका कर रोने लगी। रोटियाँ बेलते हुये उसके दोनो हाथ ठहर गये। उसकी मा ने मुझे घर के आगन मे अपने पास बैठाते हुये कहा—

"बेटा! यह रात से रो रही है।"

अजीत के रोने का कारण मैं जानता था, इस लिये उत्तर मे कुछ न कहा।

"रात को ही यह तुमसे मिलने आना चाहती थी। पर बेटा मैंने इसे रोक दिया।"

"पहले तो न रोकती थी ?"

"पहले बात और थी। अब इसकी सगनी हो चुकी है।' अजीत की मा ने सहज भाव से कहा।

"सब खेल समाप्त। अब क्या है इस गाँव मे ?" मैंने छाती पर पत्थर रखते हुये मन ही मन कहा। अजीत की मा कहती रही—

'कैसी अजीब लडकी है ? रात भर तुमसे मिलने को ताबड तोड करती रही। और अब जब तुम स्वय ही आये हो तो, यह नमस्ते तक नही करती।"

मेरे पास अब कुछ कहने के लिये क्या था ? कुछ देर और बैठ कर खाली मन चला आया। घर घुसकर बैठने को जी मे न आई। अदर घुटन महसूस करते हुये उन खेतो की ओर चल पडा जिनकी हरियाली मे निरतर दो वर्षो से प्रेम की गीतिकाएं गाता आ रहा था। पर अब वही हरियाली कुछ कटाक्ष सा करती नजर आई। इधर उधर वृक्षो पर शाम हो जाने से आश्रय लेने वाले पक्षियो की चहचहाट मुझे युगो से गाया जाने वाला विरह गीत सा लगा। डूबते भास्कर की अतिम मयूखें मेरे विरह ताप से रक्तिम हो उठी और प्राची मे पार्थिव अशुमाली के साथ साथ मेरे जीवन फग का बालारग भी अस्त हो गया। जब मरे मन और भग्न हृदय से सध्या की काली चादर ओढकर मैं घर की ओर लौट रहा था तो अजीत मेरे पास से गुजरी। एक क्षण भी न ठहरी ! ओह !

मैंने रुककर पुकारा—"अरी अजीत !'

वह न रुकी। अपनी राह चलती ही गई।

मन मे आया क्या यही वह अजीत है जो कभी घटो मेरी प्रतीक्षा करती हुई गाया करती थी कि 'परदेशिया घर आ, असा राह विच अखियाँ बिछाइये ने' नहीं नहीं यह वह अजीत नही है कोई और ही है ।"

रात को सो न सका। बदलते हुये जमाने की बेदर्दी ने कलेजा चाक कर डाला। इच्छा हुई कि अभी यह गाँव छोड दूँ पर मेरी नियुक्ति कही और होनी थी। इसलिए सरकारी आदेश प्राप्त होने तक कही भी न जा सकता था।

× × × ×

एक दिन मैंने देखा अजीत के घर मे चहल पहल शुरु हो गई है। मकान को सफेदी से पोता जा रहा है। किसी ने बताया कि अब अजीत की शादी होगी। उसका मगेतर किसी जमीदार का बेटा है। सारी स्थिति को समझ कर मैंने घर से निकलना कतई बन्द कर दिया ताकि उसकी शादी मे कोई विघ्न न पडे। वह खुशी खुशी अपने घर जाये।

व्याह के दूसरे दिन अजीत मेरे घर आई। बोली—"रए बीर तुम्हारी अजीत मर चुकी है। उसे भूल जाना।" मुझे लगा यह अजीत नही उसकी आत्मा मे व्याप्त अनन्त वेदना की पुकार है।

"याद तो मेरे साथ है उसकी।" मैंने आर्द्र कठ से कहा।

"सब भूल है।"

"यह न कहो। तुम्हारा जीवन मगलमय हो। यह मेरी एक मात्र कामना है।"

अजीत नत सिर खडी रही।

"अखिर प्रेम का अर्थ त्याग ही तो है। मैं तुम्हारे योग्य न था। जो हुआ अच्छा है। रही बात भूलने की यह कभी नही हो सकेगा। तुम्हारी नही उस अजीतकौर की मधुर स्मृतियाँ ही मेरा जीवन है। पथ का पाथेय है।"

लाख न बहान पर भी आँखो से अश्रु लुढक पडे। वह दृश्य देखने के लिये अजीत ठहर न सकी। चली गई और हमेशा के लिये चली गयी।

जिस दिन अजीत अनेक मधुर यादगारो को अपने मृदुल हृद प्रातर मे सजोये विदा होने वाली थी, उसी दिन मुझे भी प्राप्त आदेश के अनुसार अपने नये नियुक्ति स्थल के लिये प्रस्थान करना था। सो मैं अजीत की मा को प्रणाम करने के बाद अजीत से भी मिला और धीरे से कहा—"देखो, अजीत इस बार घडा फटे नही।"

इसके बाद मैं उसी रेल पर सवार होने के लिये चल दिया, जिसे अजीत हमेशा कोसा करती थी और घटो अनथके भाव मे मेरी प्रतीक्षा करते हुये गाया करती थी—

"परदेसिया घर आ, असा राह विच अँखियाँ विछाइया ने।"

●

जीवन पर भी पडा। अपने काम से आया और हाथ मुह धोकर होटल मे रोटी खाई और पड रहे। किसी से लेना न देना। कोई मतलब नही कि दुनिया मे क्या हो रहा है ? अपनत्व दिखाने वाले कभी कहते "अकेले हो। किसी लडकी से शादी कर घर बसालो।" उत्तर मिलता "किस लिए ? कुछ कट गई और बाकी भी कट जायेगी।" पर हितचितको ने बाकी न कटने दी। उसके लाख ना ना करने पर भी एक लडकी ढूढ कर विवाह रचा दिया। कमाऊ लडका सभी चाहते है। लडकी वालो ने देखा दहेज का कोई भभट है नही। लडका जवान और सभी तरह से ठीक। सो चट मगनी पट व्याह कर दिया। डर था कि लडका कही 'न' न कर दे। दोस्तो और उनकी पत्नियो न कोई कमी न रहने दी। विवाह म समय पर काम आने वाल माता पिता, भाई बहिन सभी बराती बन गये।

फिर एक दिन!

मैं अनेक सभाओ म व्याख्यान देकर थका हुआ घर लौटा तो देखा कि गोपाल की बहू मेरी पत्नी के पास बैठकर सिसक रही है। मैं अवाक् रह गया। चिता हुई कि जीवन मे रोते तो बहुत है और सारी उम्र। पर यह इतनी जल्दी क्यो ? मैंने आसो के इशारे से पत्नी से पूछा कि यह क्या ? वह बोली—

"रो रही है अपनी तकदीर को!"

"क्यो ?"

"इसका कहना है कि उन्हे कोई बात पसद नही । खाना पहनना, बोलना कुछ भी तो नही भाता । यह अकेले अकेले ऊब जाती है तो पास पडोस की किसी औरत से बोलते बतलाते देखता है तो गोपाल इसे आवारा कह कर झिडक देता है । अच्छा खाना बनाये तो घर दो दिन मे ही चौपट करके छोडेगी यह सुनने को मिलता है । बाहर घूम आने को कहती है तो कभी साथ नही देता । कैसे वह खुश हो ? यही समस्या इसे उलझाये हुए है ।"

पत्नी स गोपाल के दाम्पत्य जीवन का वृतात सुनकर उसकी बहू पर मुझे दया सी आई । सोच विचार कर मैंने उसे बुलाया और कहा —

'बहू की तुमन क्या दशा कर रखी है ? यही उसके खेलने खान के दिन है और तुम उसे सुखा रहे हो अपने नीरस व्यवहार से । भला ऐसा कैसे हो सकता है ? भगवान ने तुम्हे पढी लिखी और रूपवती बहू दी है । उसे खुश रखो और तुम भी खुश रहो । क्यो जिन्दगी को नरक बना रहे हो ? तुम से तग आकर वह कुछ कर बैठी तो जीवन भर पछताओगे ।"

पर गोपाल पर मेरे कहने का कोई असर न पडा । वह उठ कर चला गया ।

× × ×

१९३० के तूफानी दिन ।

सारा देश "इन्कलाब" के जोशीले नारे से गूंज रहा था ।

देशवासी सदियो पुरानी गुलामी की जजीरे तोड फेंकना चाहते थे। खून मे एक उबाल और कार्य मे लगन की अथाह शक्ति थी। पूज्य बापू को पकड कर सीकचो मे बद कर दिया गया था। सिंधवासी भी इस आदोलन मे पीछे न थे। अचानक एक रात को अपने साथी के साथ मुझे भी कारागार भेज दिया गया। जेल के एकात वातावरण मे मनुष्य अतर्मुखी अधिक हो जाता है इससे उसकी प्रवृतिया आध्यात्म की ओर मुडने लगती हैं। ससार असार लगने लगता है।

अभी पूरा वर्ष भी न हुआ था कि एक दिन आग की तरह यह खबर फैली कि "गाधी-इरविन" पैक्ट हो गया। हमे तत्काल मुक्त कर दिया गया। हजारो देशभक्त एक साथ जेल से बाहर आ गये। जनता मारे खुशी के झूम उठी। प्रात.काल जुलूस निकला। नौ बजे रात को समाप्त हुआ। छुट्टी पाते ही मैं घर की ओर लपका। गोपाल टकराया। चेहरा मुरझाया हुआ। बाल सूखे और आँखे सड्डो मे।

मैंने पूछा—

"यह क्या रे गोपाल !"

"कुछ नही। भैय्या ! पहले मेरे साथ घर चलो।"

"क्यो ? सब कुशल तो है ?" यह कह कर गोपाल के साथ हो लिया।

घर पहुँचते ही गोपाल ने गद्‌गद् कंठ से आवाज लगाई—

"लीला ! देख भैया आये हैं।"

"झूठ ! भैया नहीं आयेंगे। तुमने उन्हे नाराज कर दिया था।" दीवार की ओर मुँह किए पलग पर लेटी लीला ने उत्तर दिया।

मैं जहाँ था, रुका रहा। लीला के स्वर मे क्रोध, घृणा और अविश्वास था। मैंने गोपाल को कुछ न कह कर मर्मान्तिक दृष्टि से देखा। वह मेरे पैरो की ओर झुका पर मैंने उसे बीच मे रोक कर कहा—"अब भी नही सँभलोगे ?"

'भैया ! और शर्मिन्दा न करो। मैं तो खुद ही पश्चात्ताप की आग मे जल रहा हूँ। काश ! मैं आपकी नेक सलाह उसी वक्त मान लेता ! लीला को आप शात कीजिए। इसे कई दिनो से ज्वर आ रहा है। बेहोशी मे यह पता नही क्या-क्या बकती है ?"

मै लीला के पास बैठ गया। उसके शरीर से ज्वर की गर्मी निकल रही थी। मैंने धीरे से कहा—

"लीला ! मै सचमुच आया हूँ। तुक कैसी हो ?"

लीला मेरी आवाज सुनकर उठ बैठी। उसने अपने अस्त-व्यस्त बाल और कपडे ठीक किए। क्षण भर के लिए उसके चेहरे पर हँसी आई और फिर फूट-फूट कर रोने लगी। काफी रो लेने पर उसका मन हल्का हुआ।

अब मैंने समझा कि केवल गोत्र देखने और कुंडली मिल

जाने से कुछ नही बनता यदि वर-वधू के स्वभाव प्रतिकूल हो।

'लीला! मुझे क्षमा करो। अब मै भरसक प्रयत्न करूँगा कि तुम्हे समझ सकूँ।" गोपाल ने कहा।

"रहने भी दो। इतने दिन यह सब नही कर सके। अब क्या करोगे? किसी एक बात मे भी तो हम एक नही।"

इस प्रकार दोनो एक दूसरे को कहते सुनते रहे। अंत मे मैने उन्हे यथायोग्य कह सुन कर समझाया।

जेल से आते ही मैं फिर अपने कार्यो मे व्यस्त हो गया। गोलमेज कान्फ्रेंस के असफल होने के बाद फिर से राजनैतिक आकाश मे संघर्ष के गहरे बादल छा गए। भारत सरकार ने सोचा कि गाधी जी के इगलैड से लौटने से पूर्व ही उनके पर काट दिए जायं। अचानक प० नेहरू और सरहदी गाधी को पकड लिया गया। फिर क्या था? दोनो ओर से युद्ध के ढोल बज उठे। पुलिस अपनी बदूके और लाठिया ठीक करने लगी। दीवान सत्याग्रहियो ने "देखना है जोर कितना बाजुए कातिल मे है।" गाना शुरु कर दिया। एक दिन पुन' मै सीकचों के भीतर परिचित स्थान मे था। ससार की माया महा ठगनी से फिर एक बार नाता टूट गया। "रामजी! यह ससार बना ही नही" कहने वाले योग वाशिष्ठ को पढना शुरू किया।

इस बार नौकरशाही कोई समझौता करना न चाहती थी।

परिणामस्वरूप अन्य मित्रो के साथ पूरा वर्ष जेल की रोटी खानी पडी।

मुक्ति के दिन अनेक मित्र जेल द्वार पर लेन के लिये आये। उनमे गोपाल और लीला भी थे। दोनो के चेहरो पर नई जिंदगी अठखेलियाँ कर रही थी। लीला की गोद मे फूल सा सुकोमल शिशु था। उसे निहार कर मैं मुस्कराया। लीला ने नीची नजरो से उस शिशु को मेरे हाथो मे थमा दिया। मैंने उस ऊपर उछालते हुए कहा - "तुम दोनो का यही प्रायश्चित है क्या"

सब खिलखिलाकर हँस पडे।

वचन का मोल

रामपुर की उस भगी स्त्री का गोरा चिट्टा रग, वडी-वडी पानीदार आँख, गठा हुआ शरीर, कही कोई कसर नही और खुला हुआ ललाट, सहज मे ही देखने वाले के मन में शक पैदा करती थी कि और चाहे जो हो, पर भगिन तो नही हो सकती।

मैं इसी असमजस मे पडा था कि मेरे साथी ने मुझे बताया कि यह भगिन जन्म से मुसलमान है, पर इसका पति एक हिन्दू है। यह जहाँ हिन्दू देवी देवताओ को पूजती है, वहाँ मुसलमान पीर फकीरो की भी वडी इज्जत करती है। इसके घर मे दिवाली और ईद दोनो ही त्यौहार वडे चाव से मनाये जाते है।

छप्पन के साल की याद आज भी उन लोगो को भयभीत कर देती है, जिन्होने उसके भयानक दुष्काल को देखा था। लाखो मनुष्य कीडे मकोडो की तरह मरे थे। वर्षा के न होने से चारो ओर सूखा पड गया था। मध्य भारत, पजाव और दूसरे प्रातो का जहाँ अनेको नदियाँ बहती हैं जब यह हाल था तब भला राजस्थान के मरुप्रदेश की क्या दुर्दशा हुई होगी? यह सहज ही सोचा जा सकता है।

इन्ही दिनो राजस्थान का एक भगी परिवार अकाल से पीडित होकर, पेट की ज्वाला शात करने के लिए सिंध की ओर

जा रहा था। रात हो जाने से वह एक ग्राम मे रुक गया और ग्राम के बाहर भगी बस्ती के पास खुले मैदान मे आकाश के नीचे उसने अपना डेरा डाला। जब इसकी खबर बस्ती के मुसलमान भगियो को लगी, तब उन गरीबो ने इन अतिथियों की यथाशक्ति सेवा की। यद्यपि वे मुसलमान भगी थे, पर गरीबो मे प्रभु ने जो सहज स्नेह और अपनत्व बाँटा है, उसको इन लोगो ने जी भर कर लुटाया। धनवानो से बडे मंहगे भावों पर अनाज लाकर अपने अतिथियो को खिलाया। वहाँ के धर्माभिमानी हिन्दू यह दृश्य देखते ही रह गए। अपने घरो मे सब कुछ होते हुए भी अतिथियो से अन्न तो दूर पानी तक के लिए न पूछा।

दूसरे दिन जब यह दुखी भगी परिवार अपने मार्ग पर बढने लगा तब उन मुसलमान भगियो ने बडे स्नेह से दो-चार दिन और सुस्ता लेने के लिए कहा—आखिर बहुत कहने सुनने पर वे रुक गये और दो-चार दिन मे ही इस तरह हिलमिल गए मानो वर्षो के मित्र हो।

तब मुसलमान भगी परिवार के सर्वेसर्वा वृद्ध ने सोचा कि इस प्रेम को स्थायी रूप क्यो न दे दिया जाये ? उस हिन्दू भंगी परिवार मे एक सुदर कन्या थी। आयु भी यही कोई सोलह-सत्रह साल की होगी। लडकी असीम सौंदर्यमयी थी। अगर मर्यादा और छूआछूत का प्रश्न न होता तो कोई भी ठाकुर-ब्राह्मण उसे अपनी पत्नी बनाने मे अभिमान मानता।

वृद्ध ने बड़े नम्र भाव से कन्या दान की प्रार्थना की, परन्तु बेचारा हिन्दू भंगी यह बात सुनते ही कांप उठा। आज तक उसके कुल में ऐसी ब्याह-शादी की घटना न हुई थी। उसने यह तो अवश्य सुना था कि राजपूतों ने अपनी बेटियाँ मुसलमानों को ब्याही पर किसी भंगी ने ऐसा किया हो, यह कभी न सुना था।

इधर उसने सिंध के मुसलमान जागीरदारों के बारे में इतने खौफनाक किस्से सुन रखे थे कि वे कामी और शैतान गरीबों की जवान बहू-बेटियों को जबरन अपने घरों में डाल लेते हैं। अगर कोई इन्कार करता है तो वह उसे जेल तक भिजवा देते हैं।

फिर उसने सोचा आखिर भंगी की कन्या किसी भंगी के ही तो घर जायेगी। यह जाति पाँति धर्म भेद सब ढोंग है। तब उसने एक राह ढूंढ निकाली और वृद्ध मुसलमान भंगी से हाथ जोड़कर कहा कि मैं इस शर्त पर कन्यादान करना चाहता हूँ कि मेरी पुत्री से जो लड़कियाँ पैदा हों, वे हिन्दू भंगियों से ही ब्याही जायें।

वृद्ध ने यह शर्त मानली।

दूसरे ही दिन वह परिवार कन्यादान देकर आगे बढ़ा।

अभी पूरे दो साल भी न हुए थे कि भगवान की कृपा से मुसलमान भंगी के घर भी एक लड़की का जन्म हुआ। फूल सी

सलोनी चाँद सी प्यारी। प्रकृति के असीम सौन्दर्य को विधाता ने उसी के निर्माण मे लगा दिया था। वह अपनी मा की गोद मे बिलकती तो सुख का सगीत छिड जाता। मा वाप ने उसका नाम रखा "गुलाव"।

गुलाव अपने मा वाप के प्यार का मधुर जल पाकर वढने लगी और पूनम के चाँद की तरह पूर्ण होती गई। और एक दिन उसके मुख विधु पर सोलह कलाएँ उजागर हो उठी। उसका सौन्दर्य सगीत वनकर गूँज गया। रस लोलुप भूम उठे। वह प्रसिद्ध हो गई। उसके पिता को व्याह की चिता हुई।

ग्राम के राजपूत और मुसलमान जो कभी भूलकर भी भगी वस्ती के पास न फटकते थे अव गुलाव के पिता से मिलने आते और घटो मीठी मीठी वातें करते। कभी कभी कामुक दृष्टि से घर मे इधर-उधर घूमती हुई गुलाव को देख पाते तो पर जगत और मर्यादा उन्हे आगे न बढने देती। वे कसमसाकर रह जाते।

मुसलमान जागीरदारो और मौलवियो को गुलाव की अतीव कमनीयता का पता चला तो फिदा होगए। अपने अपने तौर तरीके से उसे पाने के लिए सभी ने उसके वाप को समझाया कि इस्लाम के नाते हम सभी भाई हैं। हम मे कोई भी भगी सैयद और शेख नही है। अमीर गरीव का भी कोई प्रश्न नही। इस-

लिए तुम अपनी लडकी किसी भगी को न देकर हमे दे दो। राज करेगी राज! क्यो व्यर्थ ही उसको अपने गन्दे और जलील पेशे मे घसीट रहे हो?

उत्तर मे गुलाब के पिता ने एक ही बात कही कि वह गुलाब किसी मुसलमान को न देकर, हिंदू भगी के साथ ब्याहने के लिए वचनबद्ध है।

यह सुनते ही मौलवियो ने इस्लाम खतरे मे है का नारा आग की तरह फैला दिया।

बेचारा मुसलमान भंगी समझ नही सका कि क्यो एकाएक इस्लाम खतरे मे पड गया? मुल्ले मौलवियों के द्वारा उसके खिलाफ यह नारा बुलदी देखकर उसे आश्चर्य हुआ। उसे सत्रह साल पहले की याद आयी कि उसके हिन्दू लडकी से व्याह करने पर किसी भी हिन्दू ने एतराज नही उठाया था, ये मुसलमान ही इस प्रकार क्यो बौखला रहे हैं? लाचार वह हिन्दुओ के पास सहायता के लिए गया कि वे इस मजहबी तूफान से उसे बचायें पर मुसलमानो के डर से हिन्दुओ ने कुछ न सुनी। वह निराश न हुआ। अपने मालिक पर गहरा भरोसा रखकर जिस किसी तरह दिन निकालना रहा।

गुलाब के पिता पर इस्लाम की जोरदार दुहाई का असर न होता देखकर थैलियो के मुंह खोलकर उसे डिगाने का विफल प्रयास किया गया। जमीन देने के वायदे भी आये। पर वह

पूर्ववत् अपनी बात पर अडिग रहा। अत मे उसे मार डालने की धमकी दी। उसने यही कहा कि मुझे मरना मजूर है, पर वचन भग नही करूगा। खुदा ने मुझे बनाया है। मर्द की मर्दानगी यही है कि वह अपना कौल वचन मरकर भी पूरा करे।

तूफान की भयदायिनी गति देखकर सभी अपने आप मे समाये रहे। जो सहानुभूति रखते थे, वे भी। क्या यही सस्कृति की रक्षा है?

गुलाब के पिता ने अपनी बात पर अडे रहकर खोज जारी रखी। अत मे अनेक कठिनाइयो के बाद उसे नौजवान हिन्दू भगी मिल ही गया। उसने मालिक का लाख शुक्रिया किया।

एक रात को गुलाब के हाथ पीले हो गए किसी को खबर न लगी।

तारो की झिलमिलाहट मे गुलाब अपनी मा और वचन बद्ध वीर पिता से सदा के लिए जुदा होगई।

जुदा होते समय गुलाब फूट कर रोने को हुई कि उसके पिता ने छाती से लगाकर कहा—

"मुस्करा बेटी कि मेरा प्रण पूरा होगया।"

× × × ×

सुबह गुलाब के ब्याह की बात फैली। लोगो को विश्वास न हुआ। जाच की गई। बात सही थी, सो सही निकली। प्रश्न उठा कि अब क्या हो?

"तौहीन की है। उसे मार डाला जाये।"

मजहबी पागलों ने गुलाब के पिता के घर को घेर लिया। उसे ललकारा कि बाहर निकलो और उसके घर को आग लगादी।

गुलाब की मा ने आग की लपटों को बढ़ते देखकर कहा—

"चलो । भागो ।"

"पर कहाँ ? बाहर कौन सी प्राण रक्षा होगी ?"

"तो ?"

"तो क्या ? इन हिंसक पशुओं के बीच जीकर रहने से भी क्या होगा ? मानलो आज बच भी गए। पर कल ये लोग फिर हमें मारने के लिए दौड़ेंगे और मार डालेंगे।"

"पगली रोती है !"

"गुलाब ?"

"उसके लिए न घबरा। वह गई अपने घर।"

"सुनेगी दि !"

"यही कहेगी कि मेरे बाप और मा को अग्नि देवता ने पापियों के हाथों न मरने दिया।"

और दोनों आलिंगनबद्ध होगए।

आग की ऊँची ऊँची लपटों ने उन दोनों को घेर लिया

धर्मांध, कामी मानव बाहर इस प्रतीक्षा में खड़े रहे कि इस्लाम का बैरी जरा निकले तो पर वचन का मोल चुकाने वाला अपनी प्रेयसी के साथ उनकी पकड़ से दूर और बहुत दूर जा चुका था।

●

पंजू का पता

पजू ने अपने हाथो से मुझे पत्र दिया, जिस मे लिखा था,

राम गली

हैदराबाद (सिन्ध)

मेरे प्रिय!

मुझे बडे दुख के साथ लिखना पडता है कि आज हमारी शादी हुए पूरा सप्ताह बीत चुका है, परन्तु दासी को अपने घर ले जाना तो दूर, आपने दर्शन तक नही दिये। मैं दिन रात प्रतीक्षा मे रहती हूँ कि आप आयें और मुझे ले जाये। अधिक क्या लिखूं मुझे न दिन को चैन, न रात का आराम है। हर समय आप की याद सताती है। कृपया इस पत्र को पढते ही आयें, और अपने घर ले जाये!

आपकी दासी

चचला

पंजू ने पूछा अब आपकी क्या राय है, मैं जाऊँ क्या? परन्तु मैं खुद भी समझ नही रहा था! इस लिये केवल "हूँ" अच्छा देखा जायगा, कह कर उसे टाल दिया।

अभी कठिनता से चार-पाँच दिन बीते होंगे कि वह एक और पत्र ले आया—लिखा था। 'अफसोस! आपने मेरे पत्र का

पिचासी

कुछ भी जवाब नही दिया। मै आपसे कह देती हूँ कि आपने उत्तर न दिया और न घर ले गये तो मैं विवश होकर आत्म हत्या कर लूंगी, फिर न कहना कि मैंने आपके खानदान को लजाया है।

आपकी

चचला

इन पत्रो को देखे आज पूरे चार साल होने आये हैं फिर भी मुझे वह हर होली पर याद आते हैं और याद आता है पजू का अपनी स्त्री की जुदाई मे उदास चेहरा।

हैदराबाद (सिन्ध) की बात है। मैं जिस मकान म रहता था, उस मकान के मालिक म्यूनिसिपल कौंसिलर और बडे भारी जमीदार थे। उन्ही का एक बीस साल का नौजवान नौकर था। नाम था पजू। पजू बडा ही मजेदार आदमी था, उसकी मालकिन के सिवा बाकी मोहल्ले की सभी स्त्रियाँ उस पर बडी प्रसन्न रहती थी। कारण पजू तनख्वाह तो अपनी मालकिन से लेता था, मगर काम मोहल्ले भर का करता था।

होली मे अभी कुछ दिन थे। प्रकृति एक नवयौवना की तरह हर दिल मे एक नई मस्ती भर रही थी। गली के बच्चों ने अपनी-अपनी रग बिरगी पिचकारियाँ ठीक कर ली थी। युवतियाँ बडे-बूढो की आँख बचा कर अपने पतियो से कह रही थी, बडे वो हो जी, पिछले साल तुम भाग गये मगर इस साल रग डाले बिना

मानूंगी।' मैं भी सोच रहा था कि जा हा मैं भी अब की बार
ली खेलूंगा।

दोपहर का वक्त था। मैं भोजन के उपरान्त एक समाचार
त्र लेकर बैठा ही था कि पजू आ बैठा।

मन कहा—पजू क्या बात है? मालकिन से कुछ झगडा हुआ
है क्या?

"नहीं तो

"फिर क्या बात है?"

"माना तो कहूँ"

"हाँ हाँ तुम बेशक कहो। मेरे बस की होगी तो जरूर
करूँगा।'

"बस मे आपके क्या नही? पर आज गरीबो की सुनता ही
कौन है?' पजू गमगीन मुख बना कर बोला।

"अरे! पर कुछ कहो तो सही, मैं भी तो जानूं कि क्या बात
है?" मैंने समाचार-पत्र एक ओर रखते हुये कहा।

"बात क्या है। यह तो आप भी जानते हैं। आप के सिवा
मेरे और कौन है। आज ही चने की माँ, भुंगडे की मौसी मुझ
से कह रही थी कि अगर आप अगुआ हो जायें तो मेरी शादी
आज हो सकती है।' पजू बडी नम्रता मे बोला।

फिर थोडा रुक कर पजू ने मेरे पैर पकड लिये। मैं हैरान

था कि इस मस्तराम को क्या उत्तर दूं जो दूसरो के वर्तन मल-मल कर जीवन निर्वाह करता है। आठ आठ दिन तक स्नान नही करता, उसे भी शादी का शौक चर्राया है। मुझे गुस्सा आ रहा था उन स्त्रियो पर जो पजू से काम लेने की खातिर उसे हवाई किले दिखाती थी। शायद पजू से कहा गया था कि जब तक मैं हाँ न करदूं मेरे पैर न छोडे जायें, लाचार मुझे हाँ करनी पडी और इसी होली पर शादी करा देने का वचन देना पडा तब कही जाकर उसने मेरे पैर छोडे।

रात होते होते यह बात मोहल्ले भर मे फैर गई। हर स्त्री के मुख पर यही बात थी कि पजू की शादी होली पर होगी। फला बाबू ने गरीब पर दया कर सब प्रबध कर दिया है। पजू की मालकिन को वधाइयाँ मिल रही थी। इधर पजू ने सब काम-काज छोड कर खूब नहाना धोना शुरू कर दिया था। उसकी मालकिन यह सब देख कर आपे से बाहर हो रही थी। मगर मालिक जानता था कि ऐसा नौकर जो गधे की तरह सारा दिन काम करता है, जिस पर खाली रोटी कपडे पर हमारे पास पडा है, सारी दुनियाँ मे चिराग लेकर ढूंढने पर भी नही मिलेगा!

मैंने अपनी जान छुडाने के लिये यह बहाना किया था, परन्तु इस प्रकार बात फैलते देख मैंने सोचा अच्छा तो पंजू की शादी हो ही जाय! पंजू के भाग्य कहिये या "निर्बल के बल राम" कहिये सब आप से आप हो गया। आशा से अधिक एव अच्छे

घर की कन्या मिल गयी। ब्राह्मण को बुला कर ग्रह आदि सब शाध लिये गये। लग्न धरा ली गयी। खर्च की जवाबदारी पजू की भामियो और नौजवाना ने अपने ऊपर ले ली, बैंड वाले भी मुफ्त मे आ गये। उन्होने सोचा ऐसी मशहूरी का मौका फिर कौन जाने कभी प्राप्त हो या न भी हो!

शाम का वक्त, हाली का दिन। मित्र मण्डली की आँखो मे मस्ती छा रही थी। आगे आगे बैंड भी सुरीली तान मे बजता जा रहा था, पीछे पजू की सजी हुई गाडी थी। पजू ने भी मागा हुआ सूट पहन रखा था। मुंह बोली बहनें विवाह के गीत गा रही थी। पीछे-पीछे बराती चल रहे थे जिन मे हर प्रकार के लोग साहूकार, गरीब, जन सेवक और कर्मचारी थे। लडकी वाले भी यहीं आ गये थे, इस लिये इधर बरात निकली, उधर लडकियो ने बहू को पिया प्राप्ति के लिये सिगार कराना शुरू किया। बडी सजधज और धूम धाम से शादी हुई।

पजू का अपना कोई घर तो था नहीं, इस लिये बहू अपने घर चली गई। दोस्त भी रात के बारह बजे तक हो हुल्लड करते रहे। आखिर सब थक कर अपने अपने घर को गये। मैंने भी सुख की सास ली, क्योंकि पजू का विवाह निर्विघ्न समाप्त हुआ था।

दूसरे ही दिन सारी दुनिया की तरह मैं भी अपने कामो मे लग गया। किस की शादी और कैसी शादी, सब भूल भाल

गया। मेरी आँख तो तब खुली जब पंजू ने एक सप्ताह बाद लिफाफा दिया, जिसका जिक्र मैं ऊपर कर चुका हूँ। पत्रों का यह क्रम चल ही रहा था कि "सुख मे रैन बसेरा करने वाले सिन्ध मे" जिन्ना साहब का तूफान आया, जिसमे "इस दिल के टुकडे हजार हुए कोई यहाँ गिरा, कोई वहाँ गिरा"।

पता नही पजू कहाँ है और कहाँ नही ? काश उसे बता दिया जाय कि उस की शादी तो होली का हुल्लड थी—और वह भी उसकी मालकिन के छोटे भाई के साथ। परन्तु इस बात को मैं आज भी नही समझ पाया, कि वह कौन वियोगिन थी जो अपने हृदय की टीस इस प्रकार पत्रो मे निकालती थी, जिसमे गरीब पजू मजनू बना जा रहा था।

"स्पेशलिस्ट"

कुछ दिनो से मेरी एक दाढ मे दर्द चला आ रहा था। और दिन प्रति दिन बढता ही जा रहा था। अपने राम ने सोचा, श्रीमती जी से क्यो न राय ली जाय, कारण वे इस अखाडे मे मुझ से बहुत पहले उतर चुकी थी और अब पूरी डाक्टर बन गई थी।

यूँ भी अपने राम लेडीज फर्स्ट के पक्षपाती है तब उन्हे कैसे भुलाया जा सकता था। जो हो हम ने डरते डरते अपना केस रखा! पर क्या कहने उनके उत्तर के! उनका उत्तर बिलकुल सिपाहीयाना था। उन्होने हँसते हुए कहा—

"यह भी कोई घबराने की बात है। मर्द होकर घबराते हो! छि!"

पर अफसोस उन्हे हमारी वेदना का पता न था, नही तो शायद वे ऐसा उत्तर न देती!

पैंतालीस साल पहले की बात है। हम यही कोई लगोटी बाधना सीखे थे। अचानक एक दिन हमारे ग्राम मे भूचाल सा आ गया, जिसे देखो उसी के मुँह पर एक ही बात थी। कुएँ पर, खेत पर, घरो मे, बाजार मे, बस यही चर्चा थी कि लाला रामलाल का लडका दाँतो का स्पेशलिस्ट बन कर आया है,

अपने राम भी साथियो को लेकर दुकान पर जा डटे। हमने देखा कि डाक्टर साहब को राह चलने वाले भी बडे ध्यान से देखते है और तो और सदा लम्बा घूंघट निकालने वाली भाभियां भी जब दूकान के सामने आती है तब बिन मांगे दर्शन देती है। तब हमारी उत्सुकता का बढ जाना स्वाभाविक ही था!

पुरानी मेज पर कुछ लोहे के औजार और शीशियां रखी थी। डाक्टर साहब बडी शान से लालटीन छाप सिगरेट पी रहे थे। हौले-हौले काफी लोग जमा हो गये, मानो अभी मदारी का खेल शुरू हुआ। अचानक हमारी पीठ पर थप्पड पडा। मुडकर देखने की भी किसे हिम्मत थी, कारण इस थप्पड को हम पहचानते थे। मैं घर लौट आया, पर डाक्टर की सुन्दर छवि कुछ आँखो मे ऐसी समा गई, कि रात भर उन्ही के स्वप्न लेता रहा।

दो चार दिनों मे ही आस-पास के ग्रामों मे यह खबर फैल गई कि फला ग्राम मे दाँतो का स्पेशलिस्ट आया है। दूर दूर से दाँतो के रोगी आने परन्तु दूर से ही देख कर चले जाते। डाक्टर की दूकान पर कोई न चढता, राम जाने क्यो उन के मन में कोई शका थी, या डाक्टर को आँखो ही आँखो मे तोलते थे कि यह कुछ जानता भी है या नही।

ग्रामीणो का सरल स्वभाव तो आप जानते ही हैं। वे

शहरियो की तरह पडोस मे बसने वालो के लिये यह नही कहते कि हम क्या जानें कि कौन रहता है, आगे पूछो बल्कि वे घर पर जा कर छोड आते है। इसी परम्परा को हम ने अपनाया। जो कोई डाक्टर को पूछता, हम बडे उल्लास स उसे डाक्टर साहब की दुकान पर पहुँचा आते। अब कोई कोई रोगी डाक्टर से प्रश्न उत्तर भी करने लगे थे, परन्तु इलाज कोई न कराता ' एक दिन हम कुछ लडके मजे ले लेकर डाक्टर का स्वाग कर रहे थे कि दूर से एक मरीज आता दिखाई पडा जिसका मुँह एक ओर से सूजा हुआ था ' हम ने सोचा, हो न हो यह डाक्टर को अवश्य पूछेगा। हमारी धारणा ठीक निकली। उस न डाक्टर का पता ठिकाना पूछा—बस फिर क्या था हमे मन मागी मुराद मिल गई और हम बदरो की भाति आगे आगे उछलते कूदते चलने लगे ' राह मे जो भी लडका मिलता उमे आंखो ही आँखो मे इशारा हो जाता। दूकान पर पहुँचते पहुँचत लडको की खासी भीड हो गई। मरीज को दूकान दिखाकर हम सब सामने के थले पर बैठ गये।

मरीज से थोडा सा समाचार ले कर डाक्टर ने इधर उधर देखा, मानो उसे मन के तराजू पर तौल रहा हा कि इतना बोझ उठा भी सकूंगा या नही, फिर उम न कस कर तेहमद को बाधा, कमीज की बाह ऊपर चढाई, और कमीज को भी एसा ही करने के लिये कहा, मानो दो पहलवान कुश्ती के लिये अखाडे में उतर

रहे हो। यह सब हो चुकने के बाद उस ने कील निकालने वाली पकड को मजबूती से पकडा। हम सब सास रोक कर उठ खडे हुए। कुछ लडके और निकट हो गये। मेरे जैसे वीर यह दृश्य देख कर और पीछे हट गये। सामने कुएँ पर जल भरने वाली स्त्रियों ने जल भरना रोक दिया। डाक्टर ने मरीज के मुँह मे पकड डाली। मरीज एक दम चिल्लाया "पारिया श्रोए, मार दिता" पर डाक्टर ने उसकी पुकार को अनसुनी कर दिया। उस ने सोचा सीधी उँगली घी नही निकलेगा। उस ने एक हाथ मरीज की कमर पर डाला, और दूसरा पकड मे, तब पीछे की ओर हट कर जोर से दाढ को खीचा। मरीज भी कोई बाबू न था पूरा जाट था। उसने भी "आत्म रक्षा" मे एक जोर का धक्का दिया। डाक्टर चारो खाने चित्त। डाक्टर गिरते ही लडके भाग खडे हुए, कुएँ पर खडी स्त्रियाँ बैठ गई। डक्टर कपडे साफ करता उठा, एक गिलास पानी पिया, मरीज को भी पिलाया और फिर पकड मे हाथ डाल कर शेर की तरह मरीज को घूरने लगा।

डाक्टर ने पैतरा बदला। अब की बार उसने गर्दन मे हाथ डाला। अब दोनो सचेत थे। डाक्टर इस बार मात खाना न चाहता था, आखिर उसने भी पचनद का पानी पिया था। मगर हुआ वही, जो होना था। दोनो एक साथ गिरे, मगर हाँ खून के फव्वारे के साथ दाढ भी निकल आयी। खून बहना देख

कर सब लड़के भाग खड़े हुए, और उन सब से आगे था लेखक!

हां तो, हमें भी श्रीमती जी एक स्पेशलिस्ट के पास ले गईं। वे सरदार जी तो थे ही, पर शक्ल सूरत में भी पूरे सरदार थे। बम्बई में कोई दङ्गल हो रहा था। रेडियो उसी कुश्ती का आँखों देखा हाल कह रहा था उस समय वह रेडियो सुन रहे थे। रेडियो पर जब लोगों के ताली पीटने की आवाज़ आती, तो डाक्टर साहब उठ खड़े होते, ताली बजाते और अपना बाजू ठोकते। हम ने मन ही मन श्रीमती जी के पूर्वजों को गालियाँ दीं, सोचा राम जाने, किस जनम का बदला लेने यह हमें यहाँ ले आयी है। दाढ़ निकलेगी या नहीं, यह तो अभी नहीं कहा जा सकता मगर हड्डी-पसली अवश्य चूर-चूर हो जायगी, इसमें तनिक भी शक नहीं! मगर पाठक, इन पैंतालीस सालों में विज्ञान इतना आगे बढ़ गया है, कि हम नहीं सलामत घर लौट आये।

पडोसी

आज मैं जैसे ही कवियो की तरह, कागज, पेन, सामने रख कर आँख बन्द कर कुछ सोचने लगा, श्रीमती जी ने दूर से ही आवाज लगाई, भाजी न लाओगे, तो खाओगे क्या, मेरा सर ?

मैंने आँख खोली, और रोष से कहा—"तुम भी खूब हो। दो पैसे की सब्जी के लिये मेरी लाख रुपये की कहानी ऊपर नीच कर दी।'

"रहने भी दो, अपनी कहानी। जिन कहानियो के लिये आर्य समाजी पण्डितो की तरह तुम निरकार का ध्यान लगाये रहते हो, ऐसी बीसो कहानियाँ साकार रूप मे मेरे सामने चूहो की तरह दौडती रहती हैं। सुनूँ तो तुम्हारी कहानी—श्रीमतीजी ने कहा—"कुछ लिखा भी हो, तो सुनाऊँ। मेरा तो सभी गुड गोबर होगया। यही कुछ हास्य रस पर सोच रहा था" मैंने कहा।

"हास्य रस क्या होना है, यह तो मैं नहीं जानती। पर हाँ, हमारा एक पडोसी था। उसकी हरकतें देख कर हम बच्चे खूब हँसा करते थे। मारे हँसी के पेट में बल पड जाते थे। कहो तो सुनाऊँ ?"

"जरूर-जरूर, तुम एक नही अनेक सुनाओ। परन्तु जरा सब्जी ले आने दो।"

"वाह साहब वाह। अपनी बात के लिए तो घटो सर

गे मगर मेरी बात के लिए सब्जी का बहाना। जाओ मैं सुनाती।"

"ऐसा कभी हो सकता है, जल में रह कर मगर से वैर। कहो मैं सुनता हूँ।"

अच्छा तो सुनो। आप कनैया के बाप सुन्दरोजी को तो जानते ही होगे।

"कनैया की मा को तो खूब जानता हूँ। बाप को कहाँ जानता हूँ।" मैंने जरा आँखों में मस्ती ला कर कहा।

"रहने भी दो, अरे हाँ मैं भूल गई, मेरी शादी से पहले ही वह स्त्री बच्चे छोड़ कर देश चला गया था।"

"लड़ती होगी कनैया की मा, बिचारा भाग निकला होगा। पुरुष गरीब जाति जो ठहरी।"

"राम, उस गरीब ने तो खूब सम्हाला था? उसकी बातें ही ऐसी थी कि सारे दिन गली के बच्चे हो हो किया करते थे। कोई कोई स्त्री तो कनैया की मा से कहती देखो बहिन, तुम्हारा लड़का सारे दिन बच्चों में खेलता रहता है। इसे किसी काम पर भेजो न? दाढ़ी मूछों वाला हो गया है, फिर भी बच्चों से खेलते शर्म नहीं आती। दूसरी कहती—"अरी कहती क्या है? वह तो इसके 'बद' हैं" तब पहली खिल-खिला कर हँस पड़ती।

एक बार कनैया की माँ ने रेलवे के बडे बाबू से कह कहा कर उसे चौकीदारी दिलवा दी। नौकरी तो उसने दस-पाँच दिन ही की, मगर की बडी शान से। क्या मजाल कनैया की माँ उससे बात कर सके। एक दिन की बात है। सुदरो जी रात भर नौकरी देकर घर लौट रहे थे। मार्ग मे एक माल गाडी खडी थी। आप गाडी के नीचे से निकल कर रेल की पटरी पार कर रहे थे कि पीठ मे लोहा लग गया। बस फिर क्या था, सुन्दरोजी गर्म हो गये। पहले तो दिल खोल कर गाडी पर थूका। जब थूक न रहा, तब लाते लगानी शुरू कर दी, लाते मारते मारते जब हजरत हाफने लगे, तब आस पास से पत्थर ले आये, और दनादन पत्थर मारने लगे—मानो गोली मार रहे हो। जब पत्थर भी न रहे तब लाठी से, गाडी के डब्बे से अपना बदला चुकाने लगे। आवाज सुन कर गार्ड के बाबू दौडे आये। तब कही जाकर सुन्दरो जी रुके। फिर भी अरमान तो रहा ही, बाबू न आते ; तो आज वह न थे, या कमबख्त गाडी का डब्बा न था।

इस घटना के बाद, कई दिन तक सुन्दरो जीटाँगो पर तेल की मालिश करवाते रहे।

रविवार का दिन था। सुन्दरो जी जगल से लकडी लाने गये। जैसे ही,एक पेड पर चढे, एक मिड ने काट खाया। आप मारे गुस्से के लाल पीले हो गये। दूसरे दिन प्रात. ही ५ बजे उठे, दिन भर की रोटियाँ पकवाई, और जगल की राह ली।

शाम को थके माँदे जब घर लौटे, तो किसी ने पूछा—क्यो सुन्दरो जी, आज दिन भर कहाँ थे? आज नौकरी पर भी नही गये?

सुन्दरो जी बडे उत्साह से बोले—रहा कहाँ? जगल मे मिडो का वंश नाश करता रहा। कल एक ने काटा था, गयी कहाँ होगी—जरूर मरी होगी!

कही शादी विवाह होता, सुन्दरो जी सबसे पहले पहुँच जाते, और वह भी स्त्री वेश मे। स्त्रियाँ घूमकर खेलती होती–राजस्थानी स्त्रियाँ—सबके मूँह पर कपडा रहता! रात का वक्त होता, सुन्दरो जी भी घूमर मे घुस जाते और किसी न किसी स्त्री का हाथ पकड कर खेलने लगते। दूसरी सब तो नाच मे मग्न होती, पर यह चक्कर दिलाने मे प्रवीण। तब वह स्त्री घबरा कर पास वाली से कहती, "बाई, मुझे तो यह सुन्दरो जी दिखे" तब सुन्दरो जी भी भाग निकलते, और हम बच्चे हो-हो कर उसके पीछे दौडते! कहना न होगा, कि बीसो बार ऐसा करते पकडे गये, मार खाई, मगर उसने अपनी आदत न छोडी।

मैंने उकता कर कहा बन्द करो इस सुन्दरो जी महाभारत को। "श्रीमती जी आँखें तरेरती हुई बोली—अभी तुमने सुना ही क्या है। वह ऐसी ऐसी हरकतें करता था, कि तुम हँस हँस कर गोल-गप्पा हो जाओ।

●

शाम को थके माँदे जब घर लौटे, तो किसी ने पूछा— क्यो सुन्दरो जी, आज दिन भर कहाँ थे ? आज नौकरी पर भी नही गये ?

सुन्दरो जी बडे उत्साह से बोले—रहा कहाँ ? जगल मे मिडो का वश नाश करता रहा। कल एक ने काटा था, गयी कहाँ होगी—जरूर मरी होगी !

कही शादी विवाह होता, सुन्दरो जी सबसे पहले पहुँच जाते, और वह भी स्त्री वेश मे। स्त्रियाँ घूमकर खेलती होती–राजस्थानी स्त्रियाँ—सबके मूँह पर कपडा रहता ! रात का वक्त होता, सुन्दरो जी भी घूमर मे घुस आते और किसी न किसी स्त्री का हाथ पकड कर खेलने लगते। दूसरी सब तो नाच मे मग्न होती, पर यह चक्कर दिलाने मे प्रवीण। तब वह स्त्री घबरा कर पास वाली से कहती, "बाई, मुझे तो यह सुन्दरो जी दिखे" तब सुन्दरो जी भी भाग निकलते, और हम बच्चे हो-हो कर उसके पीछे दौडते ! कहना न होगा, कि बीसो बार ऐसा करते पकडे गये, मार खाई, मगर उसने अपनी आदत न छोडी।

मैंने उकता कर कहा बन्द करो इस सुन्दरो जी महाभारत को। "श्रीमती जी आँखें तरेरती हुई बोली—अभी तुमने सुना ही क्या है। वह ऐसी ऐसी हरकतें करता था, कि तुम हँस हँस कर गोल-गप्पा हो जाओ।